॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

नवम्बर २०१९

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५७
अंक ११

वार्षिक १३०/– **एक प्रति १५/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–
१० वर्षों के लिए – रु. १३००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ४० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षो के लिए २०० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १७०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ८५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

'विवेक-ज्योति' की मूल्य-वृद्धि सूचना

सम्माननीय पाठको ! सभी सामग्रियों – कागज, मुद्रण के गुणवत्ता सुधार और डाक, वेतन आदि की दरों में पर्याप्त वृद्धि से 'विवेक-ज्योति' पर आर्थिक भार बहुत अधिक पड़ रहा है । इसलिये हम इसका थोड़ा-सा मूल्य बढ़ाने जा रहे हैं । अब **जनवरी, २०२०** से नयी मूल्य-राशि होगी – **वार्षिक शुल्क रु. १६०/-, एक प्रति रु.१७/-, पाँच वर्षों के लिये रु. ८००/- और दस वर्षों के लिये रु. १६००/-। संस्थाओं के लिये, वार्षिक रु.२००/- और पाँच वर्षों के लिये रु. १०००/-। विदेशों के लिए, वार्षिक शुल्क $ ५० और पाँच वर्षों के लिए $ २५० (हवाई डाक से)।** इसके अलावा 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' के अन्तर्गत **जनवरी, २०२०** से एक पुस्तकालय हेतु सहयोग राशि **१८००/-** होगी। आशा है, आप हमारा पूर्ववत् सहयोग करते रहेंगे ।

स्वामी स्थिरानन्द,
व्यवस्थापक,
'विवेक-ज्योति' कार्यालय

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

आवरण पृष्ठ के सम्बन्ध में

यह मन्दिर रामकृष्ण मिशन, बिलासपुर की है। इसकी स्थापना १९६७ ई. में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक-सचिव स्वामी आत्मानन्दजी ने की थी। यह २२ फरवरी, २०१९ को रामकृष्ण मठ-मिशन बेलूड़ मठ के अन्तर्गत हुआ।

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री एम.बी.जोशी, हल्दवानी, नैनीताल (उ.ख.)	११०००/-
श्री नुनिया राम मास्टर, सेक्ट.४९-बी, चंडीगढ़	२५०००/-
श्री सत्यनारारण ओझा, डी.डी.यू.नगर, रायपुर	१०००/-

नवम्बर माह के जयन्ती और त्योहार

९	स्वामी सुबोधानन्द
११	स्वामी विज्ञानानन्द
१२	गुरुनानक देव

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
५७९. श्री अनुराग, (स्मृति में श्रीरामराज एवं श्रीमती उषाप्रसाद) दिल्ली	चन्द्रावती देवी कॉलेज ऑफ एजुकेशन, अमवादूबे,देवरिया (उ.प्र.)
५८०. ,, ,,	पावा नगर, महावीर इंटर कॉलेज, कुशीनगर (उ.प्र.)
५८१. ,, ,,	गोपेश्वर महाविद्यालय, हथुआ, गोपालगंज (बिहार)
५८२. श्री दयाशंकर व्यास, १०२, स्नेह नगर, इन्दौर (म.प्र.)	मतलानी गार्डन, वरिष्ठ नागरिक सोसायटी, इन्दौर (म.प्र.)
५८३. ,, ,,	कीड्स हेवन हायर सेकण्डरी स्कूल, क्लर्क कॉलोनी, इन्दौर
५८४. श्री नरसिंह कुमार छाबड़ा, विहार एन्क्लेव, देहरादून	शिव मंदिर, आशीर्वाद एन्क्लेव, देहरादून (उत्तराखंड)
५८५. जी.डी. शर्मा, सेक्टर-४ गुड़गाँव (हरयाणा)	कुबेर इंटर कॉलेज डिबाई, जिला - बुलन्द शहर (उ.प्र.)

वर्ष ५७ नवम्बर २०१९ अंक ११

स्वामी सुबोधानन्द

प्रणाम-मन्त्र :

शुद्धबुद्धिप्रशान्ताय वैराग्यज्ञानमूर्तये।
सुबोधाय नमस्तुभ्यं त्रिलोकं तीर्थी कुर्वते।।

जिनकी बुद्धि शुद्ध है, जो प्रशान्तचित्त, ज्ञान और वैराग्य के ज्वलन्त स्वरूप तथा तीनों लोकों को तीर्थ के रूप में परिणत करनेवाले हैं, ऐसे स्वामी सुबोधानन्द को हम प्रणाम करते हैं ।

श्रीकृष्णदासतनयं सहजातभक्तिं,
सम्भूषितांकनयनोत्तरतारबालम् ।
श्रीरामकृष्णकृपया कृतकृत्य बुद्धिं,
वन्दे सुबोधपुरुषं विनयाप्तमूर्तिम् ।।

जन्मजात भक्तिमान, विनीत मूर्ति, श्रीकृष्णदास के पुत्र, नयनतारा की गोद को विभूषित करने वाले बालक, श्रीरामकृष्ण की कृपा से कृतकृत्य बुद्धि, सुबोधानन्द पुरुष प्रवर की वन्दना करता हूँ ।

पुरखों की थाती

संरोहति अग्निना दग्धं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तमं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम्।।६५८।।

– अग्नि के द्वारा जले हुए या कुल्हाड़ी के द्वारा काटे गये वन फिर से पनप कर पहले के समान बड़े हो जाते हैं, परन्तु कटु तथा बीभत्स वाणी द्वारा (किसी के मन पर) किया गया घाव कभी नहीं भरता। (महाभारत)

विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद् धर्मं ततः सुखम्।।६५९।।

– विद्या से विनयशीलता आती है, विनय से योग्यता प्राप्त होती है, योग्यता से धन का उपार्जन होता है, धन के द्वारा ही धर्म-कर्म सम्पन्न होते हैं और इसके फलस्वरूप सुख की प्राप्ति होती है।

यस्तु सञ्चरते देशान् सेवते यस्तु पण्डितान्।
तस्य विस्तारिता बुद्धिस्तैलबिन्दुरिवाम्भसि।।६६०।।

– जो व्यक्ति विभिन्न स्थानों का भ्रमण करता रहता है और जो विद्वानों का संग करता है, उसकी बुद्धि पानी के ऊपर पड़े तेल के बूँद की भाँति फैलती जाती है।

येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुविभारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।६६१।।

– जिन लोगों के जीवन में न विद्या है, न तप है, न दान है, न शील है, न गुण है और न धर्म, ऐसे मनुष्य का रूप धारण कर विचरण करते हुए पशु-सदृश लोग इस पृथ्वी पर बोझ के समान हैं।

अहिंसा का पुजारी : क्यों जन-जन का हिय-हार है?(२)

गीता – महात्मा गाँधी की गीता पर अटूट निष्ठा थी। गीता उनके जीवन का अभिन्न अंग थी। गीता के प्रभाव के सम्बन्ध में वे कहते हैं, ''गीता-पाठ का प्रभाव मेरे सहाध्यायियों पर क्या पड़ा, उसे वे जानें, परन्तु मेरे लिये तो वह पुस्तक आचार की एक प्रौढ़ मार्गदर्शिका बन गयी। वह मेरे लिये धार्मिक कोश का काम देने लगी। जिस प्रकार नए अँग्रेजी शब्दों के अर्थ के लिए मैं अँग्रेजी शब्दकोष देखता था, उसी प्रकार आचार सम्बन्धी कठिनाइयों और उसकी अटपटी समस्याओं को मैं गीताजी से हल करता था। उसके अपरिग्रह, समभाव आदि शब्दों ने मुझे पकड़ लिया।''

अपरिग्रह – गीता से गाँधीजी को अपरिग्रह की शिक्षा मिली, जिसका उल्लेख कर वे कहते हैं कि ट्रस्टी के पास करोड़ों रुपये होते हुए भी उनमें से एक भी पाई उसकी नहीं होती। मुमुक्षु को ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए, यह बात मैंने गीताजी से समझी। मुझे यह दीपक की तरह स्पष्ट दिखाई दिया कि अपरिग्रही और समभावी होने के लिए हृदय का परिवर्तन आवश्यक है।

सत्याग्रह शुद्ध अहिंसा शस्त्र है – जब बम्बई सरकार के सेक्रेटरी ने गाँधीजी से उनके सत्याग्रह को धमकी मानते हुए पूछा, तो उन्होंने कहा, ''यह धमकी नहीं है। यह लोकशिक्षा है। लोगों को अपने दुख दूर करने के सब वास्तविक उपाय बताना, मुझ जैसों का धर्म है। जो जनता स्वतन्त्रता चाहती है, उसके पास अपनी रक्षा का अन्तिम उपाय होना चाहिए। साधारणत: ऐसे उपाय हिंसात्मक होते हैं, पर सत्याग्रह शुद्ध अहिंसक शस्त्र है। ... अँग्रेज सरकार शक्तिशाली है, पर इस विषय में मुझे कोई सन्देह नहीं कि सत्याग्रह सर्वोपरि शस्त्र है।''[५]

अन्तरात्मा की आवाज को श्रेय – गाँधीजी ने एक बयान में कहा था, ''आप जो सजा मुझे देना चाहते हैं, उसे कम कराने की भावना से मैं यह बयान नहीं दे रहा हूँ। मुझे तो यही जता देना है कि आज्ञा का अनादर करने में मेरा उद्देश्य कानून द्वारा स्थापित सरकार का अपमान करना नहीं है, बल्कि मेरा हृदय जिस अधिक बड़े कानून को अर्थात् अन्तरात्मा की आवाज को स्वीकार करता है, उसका अनुसरण करना ही मेरा उद्देश्य है।''[६]

अशिक्षा दूर करने हेतु विद्यालय की स्थापना – गाँधीजी कहते हैं, जैसे-जैसे मुझे अनुभव प्राप्त होता गया, वैसे-वैसे देखा कि चम्पारण में ठीक से काम करना हो, तो गाँवों में शिक्षा का प्रवेश होना चाहिए। लोगों का अज्ञान दयनीय था। गाँवों के बच्चे मारे-मारे फिरते थे अथवा माता-पिता दो या तीन पैसे की आमदनी के लिए उनसे सारे दिन नील की खेती में मजदूरी करवाते थे।

''साथियों से परामर्श कर पहले छह गाँवों में बालकों के लिए पाठशालाएँ खोलने का निश्चय किया। शर्त यह थी कि उन गाँवों के मुखिया मकान और शिक्षक का भोजन-व्यय दें, उसके दूसरे खर्च की व्यवस्था हम करें। यहाँ के गाँवों में पैसे की विपुलता नहीं थी, पर अनाज आदि देने की शक्ति लोगों में थी। इसलिये लोग कच्चा अनाज देने को तैयार हो गए थे।''[७]

चरित्रबल-सम्पन्न शिक्षक चाहिए – विद्यार्थियों के जीवन को प्रेरित करने के लिए चरित्रवान शिक्षक चाहिए। इस बात को गाँधीजी स्पष्ट कहते हैं – ''प्रश्न यह था कि शिक्षक कहाँ से लाएँ? ... मेरी कल्पना यह थी कि साधारण शिक्षक के हाथ में बच्चों को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। शिक्षक को अक्षर-ज्ञान चाहे थोड़ा हो, पर उसमें चरित्रबल तो होना ही चाहिए।''[८]

स्वच्छता की शिक्षा – जनता को शिक्षित करने हेतु विद्यालय खोलने के साथ गाँधीजी ने स्वच्छता पर जोर दिया। क्योंकि गंदगी के कारण बहुत-सी बीमारियाँ होती थीं। लोगों में स्वच्छता-बोध नहीं था। खेतों में काम करनेवाले मजदूर भी मैला साफ करने को तैयार नहीं थे। गाँधीजी अपने स्वयंसेवकों के साथ गाँव के मार्गों और लोगों के आंगन की भी सफाई करते। लोगों के कपड़े भी गन्दे रहते थे। क्योंकि उनके पास दूसरे कपड़े नहीं थे। इस सम्बन्ध में गाँधीजी कहते हैं – ''हिन्दुस्तान में ऐसे झोपड़े अपवादरूप नहीं हैं। असंख्य झोपड़ों में साज-सामान, संदूक-पेटी, कपड़े-लत्ते, कुछ नहीं होते और असंख्य लोग केवल पहने हुए कपड़ों पर ही अपना निर्वाह करते हैं।''[९]

उपवास – स्वास्थ्य ठीक रखने हेतु एवं आभ्यन्तरिक शुद्धता हेतु गाँधीजी ने लोगों को उपवास रखने का परामर्श

दिया। उन्होंने यथार्थ गोरक्षा का अर्थ समझाया ''गोवंश की वृद्धि, गो-जाति का सुधार, बैल से मर्यादित काम लेना, गोशाला को आदर्श दुग्धालय बनाना आदि।''[१०]

लौकिक-आध्यात्मिक सम्बन्ध – गाँधीजी कहते थे कि लौकिक सम्बन्ध की अपेक्षा आध्यात्मिक सम्बन्ध अधिक मूल्यवान है। आध्यात्मिक सम्बन्धरहित लौकिक सम्बन्ध प्राणहीन देह के समान है।[११]

ईश्वर कृपानुभूति – ''तीनों स्थानों में सर्पादि का काफी उपद्रव था। फिर भी आज तक एक भी जान नहीं खोनी पड़ी। इसमें मेरे समान श्रद्धालु को तो ईश्वर के हाथ का, उसकी कृपा का ही दर्शन होता है। ... ईश्वर की कृति को लौकिक भाषा में प्रकट करते हुए भी मैं जानता हूँ कि उसका 'कार्य' अवर्णनीय है। किन्तु पामर मनुष्य वर्णन करने बैठे, तो उसके पास अपनी तोतली बोली ही हो सकती है। साधारणत: सर्पादि को न मारने पर भी आश्रमवासियों के पचीस वर्ष तक बचे रहना संयोग मानने के बदले ईश्वर की कृपा मानना यदि भ्रम हो, तो वह भ्रम भी बनाए रखने जैसा है।''[१२]

सविनय अवज्ञा आन्दोलन और असहयोग आन्दोलन – गाँधीजी इन आन्दोलनों में सफल हुए थे। उनके विनय का तात्पर्य भिन्न है। वे लिखते हैं – ''अनुभव से मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि विनय सत्याग्रह का कठिन-से-कठिन अंश है। यहाँ विनय का अर्थ केवल सम्मानपूर्वक वचन कहना ही नहीं है। विनय से तात्पर्य है, विरोधी के प्रति भी मन में सम्मान, सरलता, उसके हित की इच्छा और तदनुसार व्यवहार करना।'' गाँधीजी ने नमक कानून का विरोध कर सबको अपने घर में नमक बनाने और सरकार द्वारा जब्त की हुई 'हिन्द स्वराज्य' और 'सर्वोदय' दोनों पुस्तकों को पुन: मुद्रित कर बेचा।

सत्याग्रह और सत्याग्रही का कर्तव्य – गाँधीजी कहते हैं कि सत्याग्रह सच्चे का हथियार है। मैंने हमेशा यह माना है कि जब हम दूसरों के गज जैसे दोषों को रजवत् मानकर देखते हैं और अपने रजवत् प्रतीत होनेवाले दोषों को पहाड़ जैसा देखना सीखते हैं, तभी हमें अपने और पराये दोषों का ठीक-ठीक अनुमान हो पाता है। सत्याग्रही बनने के इच्छुक को तो इस साधारण नियम का पालन बहुत अधिक सूक्ष्मता से करना चाहिए।''[१३]

गिरमिटिया प्रथा का उन्मूलन – गाँधीजी के सत्याग्रह से ही गिरमिटिया प्रथा बन्द हुई। उन्होंने तीन कठिया कानून भी रद्द किया। इन दोनों का एक अलग इतिहास है, जिसका विस्तृत वर्णन यहाँ असम्भव है।

शुद्ध लोकसेवा में राजनीति – बहुत बार के अनुभव से गाँधीजी ने यह सब देखा था और चम्पारण की लड़ाई यह सिद्ध कर रही थी कि शुद्ध लोकसेवा में प्रत्यक्ष नहीं तो, परोक्ष रूप से राजनीति विद्यमान रहती ही है।[१४]

चरखा और खादी – तत्कालीन स्थिति में देश को स्वावलम्बी करने हेतु गाँधीजी ने स्वदेशी वस्त्र खादी की खोज की। उन्होंने कहा – ''१९०८ तक मैंने चरखा या करघा नहीं देखा, फिर भी मैंने 'हिन्द स्वराज्य' में यह माना था कि चरखे के द्वारा हिन्दुस्तान की कंगालियत मिट सकती है और जिस मार्ग से भुखमरी मिटेगी, उसी मार्ग से स्वराज्य मिलेगा। जब १९१५ में मैं दक्षिण अफ्रिका से हिन्दुस्तान वापस आया, तब भी मैंने चरखे के दर्शन नहीं किए थे।''[१५]

महात्मा गाँधी को समझने के लिये उनके सादगी, त्याग और अन्तर्बाह्य संघर्षमय जीवन का चिन्तन, निष्पक्ष विश्लेषण और अनुसरण करना होगा, तब हम किंचित् समझ सकेंगे। गाँधीजी के जीवन के चरम सिद्धान्तों से इस लेख को समाप्त करता हूँ।

सत्य अहिंसा और मुक्ति का सम्बन्ध – सत्य से भिन्न कोई परमेश्वर है, ऐसा मैंने कभी अनुभव नहीं किया। ...सत्य का सम्पूर्ण दर्शन अहिंसा के बिना असम्भव है। ...बिना आत्मशुद्धि के जीवमात्र से ऐक्य नहीं हो सकता। आत्मशुद्धि के बिना अहिंसा-धर्म का पालन सर्वथा असम्भव है। अशुद्ध आत्मा परमात्मा के दर्शन करने में असमर्थ है। यह शुद्धि साध्य है, क्योंकि व्यष्टि और समष्टि में निकट का सम्बन्ध है। शुद्ध बनने का अर्थ है मन,वचन,काया से निर्विकार बनना, रागद्वेषादि से रहित होना। अहिंसा नम्रता की पराकाष्ठा है और नम्रता के बिना मुक्ति नहीं मिलती।[१६] OOO

सन्दर्भ सूत्र – ५. आत्मकथा (महात्मा गाँधी) पृ. ३४८, **६**. वही, पृ. ३७७, **७**. वही, पृ. ३८२-८३, **८**. वही, पृ. ३८३, **९**. वही, पृ. ३८५, **१०**. वही, पृ. ३८८, **११**. वही, पृ. ३५३, **१२**. वही, पृ. ३९२, **१३**. वही पृ. ४२६, **१४**. वही, पृ. ३७९, **१५**. वही, पृ. ४४२, **१६**. वही, पृ. (४५३).

परिग्रहो हि दुःखाय

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

एक चील को एक मछली मिल गयी। बहुत दिनों बाद यह रुचिकर आहार उसे मिला था। उसके आनन्द का क्या कहना! लेकिन यह क्या! सैकड़ों कौए काँव-काँव करते हुए उसके पीछे पड़ गये। बेचारी चील, जिस ओर भी जाती, शैतान कौओं का झुण्ड उसके पीछे लगा ही रहता। अचानक, मछली चील की चोंच से छूट कर जमीन पर गिरने लगी। सभी कौए मछली की ओर झपटे। चील एक पेड़ की डाल पर बैठ गई, आखिर उसने चैन की साँस ली। एक विवेकी, विचारशील साधक अवधूत उस ओर से जा रहे थे। यह सारा तमाशा उन्होंने देखा और उन्होंने चील को अपने चौबीस गुरुओं में से एक बनाकर मन ही मन प्रणाम किया। क्या शिक्षा प्राप्त की उन्होंने, चील रूपी गुरु से?

परिग्रहो हि दुःखाय यत् प्रियतां नृणाम्।

अनन्तं सुखमाप्नोति तद्‌विद्वान् यस्त्वकिंचनः।।

अर्थात् मनुष्य जिन प्रिय वस्तुओं का संग्रह करता है, वे ही सब उसके महान दुख का कारण बनती हैं। इस तथ्य को जानकर जो संग्रह नहीं करता, उस विद्वान को अनन्त सुख प्राप्त होता है।

अवधूत के चौबीस गुरुओं में एक मधुहर्ता भी था, जो मधुमक्खियों के छत्तों से मधु निकालकर ले जाता है। अवधूत ने इससे यह सीखा कि लोभी व्यक्ति किसी को भी धन नहीं देते, इकट्ठा करते रहते हैं। लेकिन ऐसे कंजूसों का धन दूसरे लोग हड़प कर मौज लूटते हैं।

रेलवे प्लेटफार्मों पर भी आपने विज्ञापन-सा देखा होगा, जिसमें यात्रियों को सुखद यात्रा के लिए कम सामान लेकर यात्रा करने की सलाह दी जाती है। यह बात प्रत्येक चिन्तनशील, विचारशील व्यक्ति अपने जीवन में अनुभव करता है कि उसके पास जितना कम सामान होता है, उतना ही वह सुखी रहता है, लेकिन सामग्री की वृद्धि के साथ-ही-साथ उसके जीवन की सुख-शान्ति कम होती जाती है।

इस संग्रह-वृत्ति के त्याग और अपरिग्रह का आध्यात्मिक जीवन में तो अत्यधिक महत्त्व है। अहिंसा के पाँच यमों में अपरिग्रह का भी स्थान है तथा सभी धर्मशास्त्रों एवं सन्तों की जीवनियों में इसके पालन के दृष्टान्त एवं महत्त्व का वर्णन पाया जाता है। इसे ही ईसाई धर्म में Poverty अथवा 'दारिद्र्य' तथा श्रीरामकृष्ण की भाषा में कांचन-त्याग कहा गया है। 'काम कांचन त्याग' के बिना भगवद्‌दर्शन सम्भव नहीं है। पंछी व दरवेश संग्रह नहीं करते। संन्यासी धन-कांचन को छूता तक नहीं। अपरिग्रह – धन-संग्रह का त्याग तथा ब्रह्मचर्य, ये दो संन्यासी के सबसे महत्त्वपूर्ण व्रत हैं।

सूफी संत राबिया की कुटिया में पानी पीने का एक टूटा बर्तन, सिर रखकर सोने के लिये एक ईंट और बिछाने के लिए एक टाट के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता था। एक अन्य सूफी संत की कन्या की इस विषय में एक मजेदार कहानी है। संत की इच्छा थी कि उनकी पुत्री का विवाह किसी अच्छे साधक दरवेश से हो। उन्हें एक युवक फकीर पसंद आ गया और दोनों का विवाह हो गया। लेकिन जब कन्या अपने पति के घर गयी, तो उसने देखा कि आबखोरे (कटोरा) में पानी और एक सूखी रोटी पड़ी हुई है। वह कुछ मायूस और असन्तुष्ट हुई तथा वापस अपने पिता के पास जाने की इच्छा व्यक्त की। फकीर ने कहा कि वह तो पहले ही जानता था कि बड़े घर की लड़की मुझ फकीर के साथ नहीं रह सकेगी। लेकिन लड़की ने अपने असंतोष का जो कारण बताया वह ध्यान देने योग्य है – मैं पिताजी से इस बात की शिकायत करने जाना चाहती हूँ कि आपने कहा था कि मेरा विवाह किसी परहेजगार (अपरिग्रही) से करेंगे। लेकिन उन्होंने उस व्यक्ति के साथ विवाह कर दिया है, जो ईश्वर पर विश्वास नहीं करता और दूसरे दिन के लिये पानी और रोटी का टुकड़ा बचा कर रखता है।

ऐसी बात नहीं है कि केवल पुरातन सन्तों के जीवन में ही त्याग और अपरिग्रह के ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं। आधुनिक काल में भी ऐसे प्रेरक उदाहरण पाये जाते हैं। अभी एक दशक पूर्व ही संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में 'पीस-पिलग्रिम' या 'शान्ति यात्री' नामक एक महिला हो गयी हैं, जिन्होंने विश्वशान्ति के लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया। अन्त:प्रेरणा से प्रभावित हो इस अमेरिकन युवती ने अपनी समग्र सम्पत्ति दान कर दी तथा पहनने के वस्त्र, एक कंघा,

टूथपेस्ट और ब्रश तथा कुछ लिखने की सामग्री लेकर विश्व शान्ति के लिए पैदल अमेरिका भ्रमण को निकल पड़ी। इस अद्‌भुत महिला ने नियम बना लिया कि जब तक आश्रय नहीं मिलेगा, तब तक चलती रहेगी तथा जब तक भोजन नहीं दिया जायेगा, तब तक निराहार रहेगी। परिव्राजक संन्यासी तो साथ में कमंडलु तथा भिक्षापात्र रखते हैं तथा भिक्षा माँगते भी हैं। लेकिन इसने यह भी नहीं किया है, उनकी कमीज पर सामने लिखा था "Peace-Pilgrim" तथा पीछे लिखा था – "walking ten thousand miles for world peace." उनके वस्त्रों पर लिखे ये शब्द लोगों को आकृष्ट करते, लोग उनसे बात करते, भोजन देते। वे कभी धन स्वीकार नहीं करतीं। जूते व वस्त्रों के पुराने होने पर लोगों के देने पर ही उन्हें बदलतीं। कभी जंगल में, कभी बस स्टैंड में, कभी फुटपाथ पर, तो कभी किसी के मकान में वे रात्रि-यापन करतीं। यह दौर चालीस वर्षों तक, उनकी आकस्मिक मृत्यु पर समाप्त हुआ, तब तक वे अमेरिका की कई बार पैदल ५०,००० से अधिक मील की यात्रा कर चुकी थीं। अपरिग्रह के विषय में उनका कहना था कि मैंने जब देखा कि विश्व में ऐसे अनेक गरीब लोग हैं, जिनके पास अपनी आवश्यकता से कम है, तो मैंने निश्चय किया कि अपने जीवन को मैं कठोरतापूर्वक मात्र आवश्यकता के स्तर पर ले आऊँगी। मैंने वैसा ही किया। मुझे कभी किसी वस्तु की कमी नहीं खली। और, देखो मैं कितनी स्वतन्त्र हूँ। जब चाहती हूँ, उठकर चल देती हूँ, जहाँ चाहती हूँ, सो जाती हूँ। मुझे इन कामों के लिये व्यर्थ समय बर्बाद नहीं करना पड़ता। भौतिकवादी और वह भी अमेरिका जैसे भोगपरायण एवं सम्पन्न देश में ऐसा दृष्टान्त सचमुच प्रेरणाप्रद है। यह इसलिए भी अधिक आश्चर्यजनक और प्रेरणाप्रद है, क्योंकि ये महिला कोई सर्वत्यागी, परिव्राजक भगवदिच्छा पर निर्भर संन्यासी नहीं थीं। लेकिन फिर भी उन्होंने सत्य के अनुसरण के लिए, एक आदर्शयुक्त जीवन-यापन करने के लिये अपरिग्रह की नितान्त आवश्यकता का अनुभव किया था। श्रीरामकृष्ण की एक महिला भक्त 'गोपाल की माँ' का दृष्टान्त इस संदर्भ में अत्यन्त मार्मिक है। विधवा 'गोपाल की माँ' गंगा के किनारे एक भवन के छोटे से कमरे में रहती हुई बालकृष्ण की उपासना तथा जप की साधना किया करती थीं। उन्हें बालक कृष्ण के दर्शन हुए थे और श्रीरामकृष्ण में अपने इस श्रीकृष्ण का दर्शन कर वे धन्य हुई थीं। एक बार श्रीरामकृष्ण के शिष्यों ने उनके निवास स्थान पर जाकर देखा कि उनका कमरा मच्छरों से भरा रहता है। यह सोचकर कि मच्छरदानी से गोपाल की माँ की मच्छरों से रक्षा हो जायेगी, उन्होंने उन्हें एक मच्छरदानी दी, लेकिन दूसरे ही दिन तड़के उन्होंने देखा कि गोपाल की माँ उनके मठ में मच्छरदानी सहित उपस्थित हैं। उसे लौटाते हुए उन्होंने कहा कि मच्छरदानी लगाने पर उन्हें निरन्तर दुश्चिन्ता होने लगी कि कहीं उसे चूहे न काट जायँ। इससे उनका ध्यान-जप न हो सका। इसीलिए वे मच्छरदानी लौटाने आयी हैं। श्रीरामकृष्ण तथा विश्व के सभी धर्म-सम्प्रदायों के साधकों के जीवन में अपरिग्रह के अनेक दृष्टान्त यहाँ दिये जा सकते हैं। अस्तु!

अपरिग्रह इतना आवश्यक क्यों है? परिग्रह में क्या बुराई है? भोग रूपी मछली के पीछे पड़े कौए किसके प्रतीक हैं? पातंजल योगसूत्र के भाष्य में व्यास देव संक्षेप में परिग्रह के दोषों को बताते हुए कहते हैं – **विषयाणामर्जनरक्षणक्षय-संगहिंसादोषदर्शनादस्वीकरणमपरिग्रहः।** अर्थात् ''विषयों के अर्जन, रक्षण, क्षय, संग और हिंसा इन पाँच दोषों को देखकर विषयों का ग्रहण न करना अपरिग्रह कहलाता है।'' इस पर टीका करते हुए स्वामी हरिहरानन्द अरण्य कहते हैं – विषय के अर्जन में दुख, रक्षण में दुख, क्षय होने से दुख, संग करने से संस्कार-जनित दुख तथा विषयग्रहण से अवश्यंभावी हिंसा और तज्जनित दुख होता है। इन सब दुखों को समझकर दुख से मुक्ति चाहनेवाले पहले विषय त्यागते हैं, बाद में और विषयग्रहण नहीं करते। केवल प्राण-धारण में सहायक द्रव्य मात्र ही स्वीकार करने योग्य होता है। श्रुति कहती है– **त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुः।**

बहुत द्रव्य के स्वामी होकर उसे दूसरों के हित में नहीं लगाना स्वार्थपरता है, साथ ही वह परदुख में सहानुभूति का अभाव है। योगीगण नि:स्वार्थपरता की चरम सीमा में जाना चाहते हैं, अत: उनके लिए भोग्य विषय का भलीभाँति त्याग आवश्यक होता है। मान लो कि किसी के पास प्रयोजन से अतिरिक्त धन है और दुखी व्यक्ति आकर उससे उसे माँगता है। यदि वह नहीं देता, तो स्वार्थपरक तथा दयाहीन है। इस कारण योगी पहले ही निजस्व परार्थ में त्यागते हैं और बाद में प्राण-रक्षार्थ आवश्यक द्रव्य के अतिरिक्त कुछ ग्रहण नहीं करते।''

विषयों के अर्जन-रक्षण में दुख है तथा सामान्य-सा परिग्रह भी एक साधक को अनेक झंझटों में डाल सकता है। इसके दृष्टान्तस्वरूप श्रीरामकृष्ण एक कथा सुनाया करते थे। एक अपरिग्रही साधु गाँव के बाहर एक घास-फूस की कुटिया में रहा करते थे। एक कौपीन व कमण्डलु के अतिरिक्त उनके पास और कोई भी सामान नहीं था। लेकिन दुष्ट चूहे आखिरकार किसी चीज को क्यों छोड़ते! वे उनकी कौपीन काट डालते। साधु बाबा को आये दिन भिक्षा के समय भक्तों से कौपीन के लिये वस्त्र भी माँगना पड़ता। एक बार एक भक्त ने सुझाया कि महाराज, एक बिल्ली पाल लीजिए, उससे चूहे भाग जायेंगे और आपको कौपीन के लिये आये दिन लोगों के सामने हाथ नहीं पसारना पड़ेगा। एक बिल्ली पाली गयी। अब बिल्ली के लिए बाबाजी को दूध भी माँगना पड़ता। लोगों ने कहा, गाय पाल लीजिए, जिससे दूध की समस्या हल हो जायेगी। गाय दान में मिली, लेकिन उसके लिये चारा कहाँ से आयेगा? भक्तों ने चारे के लिए एक खेत बाबाजी को दान में दे दिया। अब बाबाजी को दिनभर खेत, गाय, और बिल्ली की देखरेख में लगा रहना पड़ता। यह सब किसलिए – 'एक कौपीन के वास्ते।' किसी ने ठीक ही कहा है – "आये थे हरिभजन कूँ, ओटन लगे कपास।"

भगवद्भक्त भी अपरिग्रह को कुछ भिन्न कारणों से स्वीकार करते हैं। राबिया ने एक बार ७ दिन तक रोजे रखे। अन्तिम दिन दूध से रोजा खोलना चाहा, तो बिल्ली दूध पी गयी। पानी का बर्तन गिर गया। अचानक मर्माहत-सी हो शिकायत कर बैठी अपने प्रियतम प्रभु से। यह क्या तुम्हारी ज्यादती! प्रभु ने उत्तर दिया, "राबिया यदि तू चाहे, तो संसार की सारी दौलत तुझे दे दूँ। पर मेरी भी एक मर्जी है, तू क्या चाहती है।" राबिया ने तत्काल प्रभु की मर्जी पर अपने को समर्पित कर मन को संसार से पूरी तरह हटा लिया। वह अपने पास एक चाकू भी नहीं रखती थी, इसलिए कि कहीं प्रियतम अप्रसन्न न हो जायँ।

तुलसीदासजी की वह कथा है। एक रात एक चोर उनकी कुटिया में चोरी करने आया, लेकिन उसे धनुषबाणधारी दो युवक उनकी कुटिया की रखवाली करते दिखे। प्रात:काल वह तुलसीदासजी के चरणों में गिर पड़ा और रात की घटना बताई। तुलसीदासजी समझ गये कि अनन्याश्रित भक्तों का योग-क्षेम वहन करने का वचन देनेवाले भगवान ने उनकी कुटिया की रखवाली की थी। उन्हें बड़ी ग्लानि हुई कि मेरे पास कुछ सामग्री थी, जिसकी सुरक्षा के लिये भगवान को कष्ट उठाना पड़ा। उन्होंने तत्काल अपनी सभी वस्तुएँ बाँट दीं और कुटिया को खाली कर दिया।

यहाँ हम प्रवृत्तिधर्म-मार्ग के अधिकारी लोगों की बात नहीं कर रहे हैं, जिनके जीवन का उद्देश्य अर्थ और काम की पूर्ति है। लेकिन जो साधक आध्यात्मिक जीवन-यापन करना चाहते हैं, उनके लिये अपरिग्रह की आवश्यकता की चर्चा की जा रही है। दृष्टान्त सहित उपर्युक्त विवरण से अपरिग्रह की आवश्यकता के कारणों के बारे में पाठकों को स्पष्ट धारणा हो गयी होगी। साधक निश्चिन्त मन से तत्त्वचिन्तन करना चाहता है, मन को एकाग्र करना चाहता है। वह दैहिक स्तर से उठकर उच्चतर बौद्धिक और आध्यात्मिक स्तर पर जीवन-यापन करना चाहता है। वह अपनी शारीरिक एवं मानसिक शक्ति एवं मूल्यवान समय का व्यय वस्तुओं के संचय और रक्षण में नहीं कर सकता। जैसे-जैसे साधक आध्यात्मिक प्रगति करता है, वैसे-वैसे उसका बाह्य जीवन आडम्बर-विहीन तथा अधिक सरल एवं सुलझा हुआ होता जाता है। भक्त संसार की वस्तुओं अथवा व्यक्तियों की अपेक्षा प्रभु पर अधिकाधिक निर्भर होना चाहते हैं। वे जानते हैं कि अगर संसार की वस्तुओं अथवा व्यक्तियों को प्रेम किया गया, तो भगवान को प्रेम नहीं किया जा सकता। अत: वे समस्त आसक्तियों का त्याग करना चाहते हैं और इसी के अंग के रूप में सभी परिग्रहों का भी त्याग करते हैं। वे पूर्ण रूप से सही मायने में दीन और अकिंचन बनना चाहते हैं – प्रभु के अतिरिक्त और किसी वस्तु पर जीवन-निर्वाह अपने सुख और सुविधा के लिए आश्रित नहीं होना चाहते।

ज्ञानी की दृष्टि में आत्मा एक, अद्वितीय, असंग एवं निर्लिप्त है। उसमें किसी प्रकार का संग्रह या परिग्रह सम्भव ही नहीं है। अत: ज्ञानयोग का साधक आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होने के लिए परिग्रह का त्याग करता है। वैसे ज्ञानी की दृष्टि में आन्तरिक या मानसिक अपरिग्रह या निर्लिप्तता का महत्त्व अधिक है, बाह्य अपरिग्रह का नहीं। फिर भी बाह्य संन्यास का अविभाज्य अंग होने के कारण अपरिग्रह ज्ञान मार्ग में भी अपरिहार्य है। **(क्रमश:)**

यथार्थ शरणागति का स्वरूप (७/६)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्‌घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

परशुरामजी महाराज इसी पात्र के हैं कि कृपा तो आने ही नहीं देना चाहते। इसलिए उन्होंने तो लक्ष्मणजी पर जब फरसा चलाने की चेष्टा की और फरसा नहीं चला, तो उन्होंने यह नहीं सोचा कि यह कोई विलक्षण घटना है, वे कहने लगे कि आज क्या हो गया है?

मोरे हृदयँ कृपा कसि काऊ। १/२९७/२

मैंने आज तक कृपा करना तो सीखा ही नहीं, मैं तो केवल दण्ड के द्वारा ही किसी निर्णय को क्रियान्वित करना चाहता हूँ।

आजु दया दुखु दुसह सहावा। १/२७९/३

आज क्या हो गया है? मेरे हृदय में यह कृपा कहाँ से आ गई? यह तो असह्य दुःख है। एक मान्यता यह है कि कृपा की बात से समाज विशृंखल होगा, बुराई की ओर अग्रसर होगा। यह भय ही भय है। इस दृष्टि से अगर विचार करके देखें कि रोग दुराचार जन्य होते हैं, तो उसके लिए औषधि का निर्माण करना कर्तव्य है कि नहीं? अब कोई बहुत उत्कृष्ट औषधि खोज ली जाय, तो यह भी तो कहा जा सकता है कि तुम दुराचार को बढ़ावा दे रहे हो। क्योंकि दवा निकल आएगी, तो लोग सोचेंगे कि मनमाना आचरण करो। पर ऐसा तो नहीं है। कोई भी रोग अगर है, तो रोग के निराकरण की बात को इस दृष्टि से नहीं मिला देना चाहिए कि लोग इसका दुरुपयोग करेंगे। दुरुपयोग करनेवाले लोग किसका दुरुपयोग नहीं करते? कौन-सा ऐसा सिद्धान्त है, जिसका दुरुपयोग नहीं किया गया है और नहीं किया जाता है। पर वही भय आवेगा – महाराज! रावण का भाई आया है और उसको ले लिया जाय। तब यह बात आएगी कि कैसा भी व्यक्ति भगवान के पास पहुँच जाता है। लेकिन कम-से-कम इतना तो ध्यान रखिए कि कैसा भी व्यक्ति भगवान के पास नहीं पहुँच पाता। गीतावली रामायण में इसको गोस्वामीजी ने थोड़ा विस्तार किया है। वे कहते हैं – प्रभु हनुमानजी की ओर देखकर खूब हँसे। इस बात को तो सुग्रीव समझ नहीं पा रहे हैं कि प्रभु इतना हँस क्यों रहे हैं। समझे तो हनुमानजी। उस हँसी में रहस्य था। एक तो हँस रहे थे सुग्रीव की दशा पर, बोले तो नहीं, इतना ही कहा कि तुम तो बड़े राजनीतिज्ञ हो। लेकिन उन्होंने आरोप लगाया –

जानि न जाइ निसाचर माया।
कामरूप केहि कारन आया।। ५/४२/६

प्रभु हनुमानजी की ओर देखकर खूब हँसे। उन्होंने कहा कि सुग्रीव कह रहे हैं कि यह सठ भेद लेने के लिये आया हुआ है। हनुमान, तुम भी जब पहली बार भेष बदलकर आए थे, तो भेद लेने ही तो आए थे। अब देखो, ये कह रहे हैं कि भेद लेने आया है, तो भेद लेना कोई अपराध है क्या? कितनी मीठी बात है! प्रभु ने कहा, मानो भेद से वह डरता है, जिसके पास कोई दुर्बलता है। एक संत से पूछा गया, महात्मा का जीवन कैसा होना चाहिए? उन्होंने कहा पोस्टकार्ड की तरह, लिफाफे की तरह नहीं। इसका अभिप्राय है कि लिफाफे के भीतर कागज में क्या लिखा है क्या पता। पोस्टकार्ड तो कोई भी पढ़ ले। सब खुला हुआ है। जब सुग्रीव ने कहा कि वेष बनाकर भेद लेने आया है, तो प्रभु हनुमान की ओर देखकर हँसे – तुम भी तो भेद लेने के लिए नकली वेष बनाकर आए थे, ब्राह्मण बनकर आए थे। देखो, अब यह आरोप उन पर भी लग रहा है। मुझे तो यही लगता है कि तुम भेद लेने आए, तो मैं कितना लाभ में रहा। तुम जैसा सेवक मिल गया। सुग्रीव जैसा मन्त्री मिल गया। यदि यह भी भेद लेने आया होगा, तो कितना अच्छा होगा! कुछ-न-कुछ मिलनेवाला ही होगा, विश्वास रखो। यह तो बहुत बढ़िया बात है। पर ऊपर से नहीं, संकेत की भाषा में कह रहे हैं और खूब हँस रहे हैं। हँस इसलिए रहे

हैं कि हनुमानजी कह सकते हैं कि प्रभु, आप तो नहीं बोल रहे हैं। प्रभु का हँसने में संकेत है, बोलना तुम्हें चाहिए। क्यों? बोले, लंका तुम गये, विभीषण को शरण में आने का निमंत्रण तुमने दिया, यहाँ पर योजना बनाई जा रही है, उसे बंदी बनाने की और तुम चुपचाप बैठे हुए हो। ऐसे ही निमंत्रण दिया जाता है क्या? यदि किसी को भोजन का निमंत्रण दें और जब वह पहुँचे, तो घर वाले कहें कि निकाल बाहर करो इसे और निमंत्रण देने वाला चुप बैठा रहे, तो कैसा लगेगा? इसलिए मैंने तुम्हें संकेत किया, तुम्हें अवसर दे रहा हूँ। पहले नहीं, तो अब तो तुम विभीषण का समर्थन करो। लिखा हुआ है –

हिय बिहसि कहत हनुमानसों ।
सुमति साधु सुचि सुहृद विभीषन बूझि परत अनुमानसों।।
(गीतावली ५/३३/१)

मुझे तो लगता है कि विभीषण बड़ा सहृदय है, साधु है, सरल चित्त का है, पर एक शब्द जोड़ दिया। 'अनुमान सो'। संकेत क्या है? भई, तुम तो प्रत्यक्ष अनुभवी हो, तुम लंका गये थे, मैं तो अनुमान कर रहा हूँ। अनुमान का अगर प्रत्यक्षदर्शी समर्थन कर दे, तो साहस तो बढ़ेगा। तुम तो कम-से-कम यह कह दो कि हाँ, मैं जानता हूँ, यह सरल है, सज्जन है, उस बेचारे का संकट तो मिटे। पर हनुमानजी तो इतने आगे निकल गये। उन्होंने जो वाक्य कहा, प्रभु मुस्कुराए, बड़ा आनन्द आया। उन्होंने कहा कि प्रभु मैं बिलकुल यह नहीं कहूँगा कि ये सज्जन हैं। अब लीजिए, और बड़ा संकट! क्यों? तो उन्होंने कहा कि प्रभु, आपने यही कहा –

मम पन सरनागत भयहारी। ५/४२/८

मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि शरणागति जो है, वह न्यायालय है कि औषधालय है? अगर न्यायालय है, तो मैं बताऊँ कि वह अच्छा है कि बुरा और अगर औषधालय है, तो वह आपका काम है। अगर वह रोगी है, तो उसे दवा दीजिए। मैं क्यों बताऊँ? इसलिए उन्होंने कह दिया –

खोटो खरो सभीत पालिये सो, सनेह सनमानसों।
(गीतावली ५/३३/३)

महाराज, चाहे खोट हैं, चाहे खरे हैं, पर जब आप स्वयं कह रहे हैं, सुना है कि शरण में आया हुआ है, तब यह प्रश्न कहाँ उठता है? ऐसा उत्तर दिया कि प्रभु तो गद्गद हो गये। वे तो समर्थन चाहते थे। हनुमानजी ने तो प्रभु से भी आगे बढ़कर कह दिया। प्रभु तो नाटक में पूछ भी रहे हैं कि तुम कहते हो न कि यह सज्जन है? नहीं नहीं, मैं नहीं कहता –

खोटो खरो सभीत पालिए
सरनागत बच्छल भगवाना। ५/४२/९

महाराज, क्या कभी किसी गाय ने बछड़े को गंदगी से लिपटा हुआ देखकर यह कहा क्या कि पहले तुम जरा स्नान करके, शुद्ध होकर के, साबुन-वाबुन लगाकर आओ तब मैं तुम्हें अपना दूध पिलाऊँगी। अगर आपने देखा हो, तो शरणागत वत्सल माने? बछड़े को गंदगी से लिपटा हुआ देखकर गाय उसे स्वच्छ होने के लिए नहीं कहती है, अपितु अपनी जिह्वा से चाटकर उसे स्वच्छ बनाती है। अगर ये बुरे हैं, तो उन्हें अच्छा बनाने का कार्य आपका है, मुझे इसमें कुछ नहीं कहना है। वस्तुतः शरणागति में जो छः नाम लिये गये हैं, उसमें भी परस्पर विरोधी नाम हैं और परस्पर विरोधी माने? कहते हैं कि सीता वे हैं, जिनका नाम-स्मरण कर नारियाँ पतिव्रत करती हैं –

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं। ३/५ख

और अहिल्या वह है, जो पतिव्रत से च्युत हो चुकी है और भगवान के चरण क्या हैं?

जे पद परसि तरी रिषिनारी। ५/४१/६
जे पद जनकसुताँ उर लाए। ५/४१/७

एक ओर भगवान श्रीराम के ये जो चरण हैं, इनको भगवान शंकर धारण करते हैं और दूसरी ओर ये वे चरण हैं, जो कपट मृग के पीछे दौड़ते हैं। सरलता की पराकाष्ठा एक ओर और कपट की पराकाष्ठा दूसरी ओर। एक ओर जड़, जंगल और एक ओर श्रीभरत जी जैसे महान भक्त। इस तरह एक ओर सच्चिदानन्द शिव दूसरी ओर जड़ दण्डकवन, पातिव्रत च्युत अहिल्या और कपट मृग भी धन्य हो सकते हैं। मानो शरणागति का यह सूत्र है कि एक बार अगर किसी व्यक्ति के समझ में यह बात आ गई कि हम अपनी क्षमता से नहीं, पर हम प्रभु की शरण में हैं, तो उसे निश्चिन्त हो जाना चाहिए, चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं । प्रभु का द्वार सबके लिये खुला हुआ है। अहिल्या के लिए, सीताजी के लिये तो परम धन है ही, भरत जी का तो है ही, वह कपट मृग के पीछे भी दौड़ता है। शंकरजी तो प्राप्त करते ही हैं, पर दण्डक वन को भी पवित्र करते हैं। **(क्रमशः)**

सर्वश्रेष्ठ भक्ति का अंग : मातृत्व भाव

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

संसार में माँ की महिमा अपार है। हम माँ के कारण ही इस संसार में आ सके। वे हमारा अस्तित्व हैं। वे हमारी शक्ति हैं। कई धर्मों में माँ की पूजा नहीं होती, लेकिन हमारे ठाकुरजी ने माँ के मातृत्व रूप पर अधिक साधना की बातें कही हैं। मातृत्व भाव में पवित्रता है। ईश्वर के प्रति मातृत्व भाव सर्वश्रेष्ठ भक्ति का अंग है। मातृत्व भाव से ईश्वर की आराधना सरल है। क्योंकि हम सभी अपनी जन्मदात्री माँ के प्रेम से अवगत हैं। माता के प्रेम का अनुभव है। इसलिये मातृत्व भाव की साधना साधक के लिए सहज स्वाभाविक है।

साधना करते समय साधकों को हर बात में सावधानी रखनी चाहिए। यदि विषय-भोग से विरत होना चाहते हैं, तो संसार में विषय का भोग करनेवाले लोगों के जीवन में विषय-भोग के दुष्परिणाम को देखना चाहिए। विषयों की वासना और भोगों ने मानव को दास बना दिया। स्वाद का दास बना दिया। स्वाद बड़ी प्रबल इंद्रिय है। बोलने में और खाने में बहुत सावधानी रखनी पड़ती है। जो लोग बोलने में और खाने में सावधानी रखेंगे, उनका कोई भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। इसलिए विषय भोगों से दूर रहो। जैसे माँ अपने बच्चे के योग्य हितकर सुपाच्य भोजन देकर उसे स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट बनाती है, वैसे ही अपनी सन्तान के योग्य सुविचार, शक्ति और क्षमता देकर माँ उसे साधना में अग्रसर करती हैं। इसलिये मातृ रूप में भगवान की भक्ति करो। जैसे माँ से कोई दुख नहीं होता। कभी मारने पर भी बच्चा माँ को पकड़कर ही रोता है, उसे छोड़कर कहीं नहीं जाता और जब माँ प्रेम करती है, तब तो आनन्द ही आनन्द मिलता है। वैसे ही ईश्वर का मातृरूप हमें सदा आनन्द ही देता है, कभी दुख नहीं देता। अत: माँ के जैसे अपनत्व से ईश्वर को पुकारना चाहिए। अपनत्व में कभी कोई कष्ट नहीं होता।

जब तक हम किसी उद्देश्य को लेकर नहीं जीते तब तक जीवन सार्थक नहीं होता। दैनिक कार्यों में व्यस्तता के कारण भगवान का नाम लेने के लिए खाली समय नहीं मिलता। तब मन बहुत अशान्त हो जाता है। भगवान का नाम जपते-जपते मन में शान्ति मिलती है। भगवान का नाम जपने की आदत न रहने से जीवन में बहुत कठिनाइयाँ आती हैं। इसलिए हम अपनी दिनचर्या में भगवान के नाम-जप को अनिवार्य रूप से जोड़ लें।

जीवन में उद्देश्य ठीक रहने से सब ठीक हो जाता है। जीवन में हम क्या चाहते हैं, यह देखना चाहिए। अपने जीवन में उच्च आदर्श रखना चाहिए। आजकल आधुनिक महिलायें अपने बच्चों को पालने के लिये नौकरानी रखती हैं। बच्चों की सेवा हो सकती है, किन्तु जो संस्कार उसे अपनी माँ से मिलता है, वह संस्कार नौकरानी नहीं दे सकती। बच्चों को अच्छे संस्कार नहीं मिलने से उदंड हो जाते हैं, जो आगे चलकर माँ-बाप के दुख के कारण बनते हैं। माँ-बाप को बच्चों के बारे में सिर पटकना पड़ता है, उनको जीवन में दुख ही भुगतना पड़ता है। उनका पूरा जीवन दुखमय हो जाता है। इसलिये बच्चों की देखभाल माँ-बाप को स्वयं करनी चाहिए। बच्चों को स्नेह करना चाहिए, उच्च आदर्श की शिक्षा देनी चाहिए, तब बच्चे भी अपनी माँ को प्रेम करना सीखते हैं, सुसंस्कारी और सदाचारी होते हैं।

हमारे जीवन में साधना सहज और नियमित होनी चाहिए। संसार से ऊपर भी कुछ ऐसी उच्च अवस्था है, लोगों के मन में ऐसा कभी विचार ही नहीं आता है। लोग संसार में ही दर्द से भटकते रहते हैं, किन्तु संसार से ऊपर उठकर भगवान की आराधना नहीं करते। इसलिये सांसारिक दुखों से मुक्ति हेतु भगवान के नाम की साधना करना बहुत आवश्यक है। मनुष्य जन्म हमारे पूर्व जन्म के ऊपर निर्भर रहता है। जो पूर्व जन्म के संस्कारवान लोग रहते हैं, वे अपना कर्तव्य कर्म कर भगवान के नाम में मग्न रहते हैं। अगर उच्च विचारों में हमारा मन नहीं लगा, तो गलत मार्ग में चला जाएगा। इसीलिये अपने को और अपने परिवार को अच्छे संस्कार देकर अच्छे मार्ग पर ले जाना सबका परम कर्तव्य है। ○○○

श्रीगुरुग्रन्थ साहिब में भक्ति

ए. पी. एन. पंकज, चंडीगढ़

श्रीगुरुग्रन्थ साहिब में भक्ति के विषय पर चर्चा करने से पूर्व इस महान ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है।

जैसा कि सर्वविदित है, श्रीगुरुनानक देव सिख धर्म के संस्थापक तथा प्रथम गुरु हैं। उनके पश्चात् क्रमशः गुरु अंगददेव, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जन देव, गुरु हरगोबिन्द सिंह, गुरु हरराय, गुरु हर क्रिशन, गुरु तेग बहादुर और गुरु गोविन्द सिंह, दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें, आठवें, नौवें तथा दसवें गुरु हुए। गुरु गोविन्द सिंह ने खालसा पंथ की स्थापना की और उनके साथ 'व्यक्ति-गुरु' की यह परम्परा समाप्त हो गई। उन्होंने आदि ग्रन्थ को ही अन्तिम और शाश्वत गुरु के रूप में स्थापित और प्रतिष्ठित किया।

आदि ग्रंथ में पहले पाँच गुरुओं तथा छत्तीस संतों और भाटों की रचनाएं संकलित थीं। इन रचनाओं को श्रद्धापूर्वक 'बाणी' (वाणी) कहा जाता है। छत्तीस संतों और भाटों को भगत कहा जाता है। इनमें से फ़रीद, कबीर, नामदेव, रविदास आदि तेरह भगत या तो गुरुनानक के पूर्ववर्ती थे या समकालीन। अन्य तेईस परवर्ती गुरुओं के समकालीन थे। पाँचवें गुरु श्री अर्जन देव ने इन गुरुओं और भगतों की वाणी को विभिन्न स्रोतों से एकत्रित, संपादित और संकलित किया और भाई गुरुदास को उनके लेखन के लिये नियुक्त किया। भाई गुरुदास स्वयं एक कवि और गुरु-भक्त थे। अमृतसर के हरिमंदिर साहिब के निर्माण का दायित्व भी उन्होंने ही संभाला था।

दसवें गुरु श्री गोविन्द सिंह जी ने आदि ग्रन्थ में अपने पिता श्री गुरु तेगबहादुर की रचनाओं को सम्मिलित किया। ऐसी मान्यता है कि इन्हीं रचनाओं में एक 'सलोकु' (दोहा) दसवें गुरु की अपनी रचना भी है। इस प्रकार इस पूरे ग्रंथ को उन्होंने श्रीगुरुग्रंथ साहिब का नाम देकर शाश्वत गुरु के रूप में स्थापित किया।

गुरुग्रन्थ साहिब में कुल ५८९४ काव्य-रचनाएँ हैं। इनका वर्गीकरण २५ रागों और उनकी उपविधाओं के आधार पर किया गया है। सभी गुरुओं की रचनाएँ 'नानक' नाम से ही अभिहित हैं, न कि गुरुओं के निजी नामों से। गुरु-विशेष की कौन-सी रचना है, यह जानकारी महला संज्ञा से प्राप्त होती है। इस प्रकार प्रथम गुरु की रचना 'महला१' द्वितीय की, 'महला२', तृतीय की 'महला३' आदि के रूप में जानी जाती है। संख्या में गुरु के रूप में अर्जन देव की रचनाएँ सबसे अधिक हैं, उनके बाद गुरुनानक की। जपुजी साहिब को, जो कि गुरुनानक की बाणी है, सर्वोपरि और सर्वप्रथम स्थान प्राप्त है। इसे किसी राग के अन्तर्गत वर्गीकृत नहीं किया गया। इससे पूर्व 'मूल मंत्र' है।

गुरुग्रन्थ साहिब १४३० पृष्ठों का बृहद् ग्रंथ है। इन पृष्ठों को आदर पूर्वक 'अङ्ग' कहा जाता है। ग्रन्थ के सभी संस्करणों में इस संख्या को सुरक्षित रखना आवश्यक है। इसी प्रकार प्रत्येक अङ्ग के लिये पंक्तियों का निर्धारण भी किया गया है।[१]

स्थानाभाव और लेखक की सीमित बुद्धि की दृष्टि से इस ग्रंथ के सम्बन्ध में, इसके विस्तार और गहराई के सम्बन्ध में यहाँ कुछ और कह पाना सम्भव नहीं है। अतः इस विषय की चर्चा यहाँ आंशिक रूप से ही की गई है।

श्रीगुरुग्रंथ साहिब और भक्ति

श्री बलवन्त सिंह आनन्द के अनुसार, ''यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि गुरुनानक ने जिस मार्ग का समर्थन किया है, वह भक्ति-मार्ग ही है। उनकी मान्यता थी कि परम सत्य का अनुभव भक्तिमार्ग द्वारा ही सम्भव है, न कि कर्ममार्ग अथवा ज्ञानमार्ग द्वारा।''[२] नानक के मतानुसार, प्रेम, भक्ति, सिमरन (स्मरण) और आत्मसमर्पण ही भक्ति है।

पर प्रेम क्या है?

१. प्रेम

भक्तिसूत्र में नारद कहते हैं कि भक्ति ईश्वर के प्रति 'परमप्रेम रूपा' है (सूत्र२)। पर प्रेम क्या है? नारद कहते हैं – उसका स्वरूप 'अनिर्वचनीय' है। वाणी उसे परिभाषित नहीं कर सकती (सूत्र ५१)। केवल यही कहा जा सकता है कि उस परम प्रेमास्पद की विस्मृति होने से 'परम व्याकुलता' का अनुभव होता है (सूत्र १९)।[३] गुरु नानक इस प्रेम की व्याख्या कुछ उदाहरणों से करते हैं :

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीतिकरि जैसी जल कमलेहि।।
लहरी नालि पछाड़ीऐ भी बिगसे असनेहि।।
जल महि जीअ उपाइ कै बिनु जल मरण तिनेहि।। १।।
मन रे किउ छूटहि बिनु पिआर।।
गुरमुखि अंतर रवि रहिआ
बरबसे भगति भंडार।।१।। रहाउ।।[४]

"हे मन! हरि से ऐसा प्रेम कर जैसा कमल जल से करता है। लहरें उसे ठुकराती रहती हैं, फिर भी वह प्रेम के द्वारा विकसित होता है। जल में वह जन्म लेता है और बिना जल के उसकी मृत्यु हो जाती है। हे मन ! बिना प्रेम के तू जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त कैसे हो सकता है? गुरु (ईश्वर) अपने प्रेमी भक्त के हृदय में रमण करता है, वही उसे भक्ति की निधि प्रदान करता है।"

इसी प्रवाह में गुरुनानक जल से मछली के प्रेम की उपमा देते हैं। जल जितना गहरा होगा, मछली का आनन्द उतना ही अधिक होगा, क्योंकि मछली का तन, मन, अन्त:करण जल से ही तृप्त होता है। चातक के बादल से प्रेम की उपमा देते हुए नानक कहते हैं कि चातक को मरना स्वीकार है, पर स्वाति-नक्षत्र में बादल से बरसनेवाले जल के अतिरिक्त वह और कोई जल ग्रहण नहीं करता। इसी प्रकार का स्नेह, जल का दूध से है। जब दूध में उफान आने लगता है, तो उसकी रक्षा करने के लिए जल अपना बलिदान कर देता है। रात में अपने प्रेमी चकवे से बिछड़ी हुई, आतुरता से सूर्योदय की प्रतीक्षा कर रही चकवी का उदाहरण भी नानक ने इसी क्रम में दिया है।[५]

इन सभी उपमाओं का स्थायीभाव यही है कि प्रेम में परमात्मा से मिलने की अत्यन्त व्याकुलता रहती है। उनका सान्निध्य, उनका नाम जपते रहने की ललक!

पर नानक कहते हैं कि उस सच्चे नाम का उच्चारण कर पाना सुगम नहीं है – **आरवणि अउरवा साचा नाऊँ।**[६] उन्होंने कहा है कि यदि तुम प्रेम का खेल खेलना चाहते हो, तो सिर को हथेली पर रखकर मेरी गली में आओ। इस पथ पर पैर तभी रखना, यदि तुम अपना सिर अपने हाथ में रख सको; यदि तुम बिना झिझक सिर दे सको।

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ।
सिरु धरितली गली मेरी आउ।।
इतु मारगि पैरु धरीजै।
सिरु दीजै काणिन कीजै।। [७]

यहाँ यह कहना प्रासंगिक होगा कि गुरुनानक की दृष्टि में गुरु अथवा 'सतिगुरु' स्वयं करता पुरुख, सर्वव्यापक, संसार का रचयिता परमात्मा ही है, जबकि उनके परवर्ती गुरुओं ने नानक को गुरु माना है। अत: जब नानक गुरु की बात करते हैं, तो उनका अभिप्राय ईश्वर से ही होता है।

२. भक्ति

भक्ति का तात्पर्य यहाँ सेवा और पूजा है। पर यह पूजा किसी प्रकार के कर्मकाण्ड पर आधारित नहीं है। "ज्ञान तो सब के भीतर व्याप्त है। गुरु का ज्ञान ही स्नान का पवित्र तीर्थ है। हृदय-मन्दिर ही, जहाँ ज्योति-से-ज्योति का मिलन होता है, मुरारि की पूजा-स्थली है, वे स्वयं ही यह मेल करवाने वाले हैं –

अंतरि गिआनु महा रसु सारा, तीरथ मजनु गुर बीचारा।
अंतरि पूजा थानु मुरारा, जोती जोति मिलावणहारा।।[८]

कबीर कहते हैं –

कबीर जा घर साध न सेवीअहि, हरि की सेवा नाहि।।
ते घर मरहट सारखे भूत बसहि तिन माहि।।[९]

"जिन घरों में संतों की और हरि की सेवा नहीं होती, वे श्मशान के तुल्य हैं और वहाँ भूत बसते हैं।" सेवा का समर्थन करते हुए गुरुनानक कहते हैं, "जो सेवा करते हैं, उन्हें सम्मान प्राप्त होता है। हम उसका स्तुतिगान करते हैं, जो सब गुणों का भंडार है –

जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु।।
नानक गारीऔ गुणी निधानु।।[१०]

चौथी पातशाही, श्रीगुरु रामदासकी वाणी है –

जपि मन हरि नामु नित धिआइ।।
जो इछहि सोई फल पाव,
फिरि दुखुन न लागै आई।।१।। रहाउ।।
सो जपु सो तपु सो व्रत पूजा
जितु हरि सिउ प्रीति लगाई।।
बिनु हर प्रीति होर प्रीति सभु
झूठी इक खिन मह बिसार सभ जाइ।।१।।[११]

"हे मन! सदा हरि नाम का चिन्तन कर। इससे तुझे वांछित फल की प्राप्ति होगी। फिर कोई दुख तेरे पास नहीं फटकेगा। जिससे हरि के साथ प्रेम हो जाए, वही जप, तप, व्रत और पूजा सार्थक है। हरि से प्रीति के बिना सब प्रीति झूठी है, सब क्षणभंगुर है।"

३. सिमरन : नाम स्मरण

पश्चात्ताप भरे स्वर में नौवें गुरु श्री तेगबहादुर कहते हैं कि परमात्मा के नाम का स्मरण न करते हुए कैसे हम इस जन्म को वृथा गवाँ रहे हैं –

अब मैं कहा करउ री माई।

सगल जन्म बिखिअन सिउ खोईआ सिमिरिओ नाहि कन्हाई।।१।। रहाउ।।

काल फास जब कर महि मेली तिह सम सुधि बिसराई।।

राम नाम बिनु या सकंट महि को अब होत सहाई।।१।।

जो संपति अपनी करि मानी छिन महि भई पराई।।

कहु नानक यह सोच रही मनि हरि जस कबहू न गाई।।२।।[१२]

"ओ माँ! अब मैं क्या करूँ? सारा जीवन मैंने विषयों में गँवा दिया। कन्हैया का स्मरण ही नहीं किया। अब जब मृत्यु गले में फंदा डालने को है, तब सारी सुध-बुध जा रही है। इस संकट में राम नाम के बिना कौन सहायक है। नानक कहते हैं कि मन में इस बात का पश्चात्ताप ही रह गया कि मैंने हरि-यश का गान कभी नहीं किया।"

गुरु तेग बहादुर के ये वचन हमें वाराणसी के प्रसिद्ध विद्वान सन्त और गीता के भाष्यकार श्री मधुसूदन सरस्वती का स्मरण दिलाते हैं, जिन्होंने कहा था –

कृष्ण त्वदीय पदपंङ्कज पञ्जरान्ते
अद्यैव मे विशतु मानस राजहंसः।
प्राणप्रयाण-समये कफवातपित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते।।

"हे श्रीकृष्ण! आप के चरण कमलों के पिंजरे में मेरा हृदय रूपी मानसरोवर का राजहंस तुरन्त प्रवेश कर जाए। जब प्राण निकलने को होंगे और गला कफ, वात और पित्त से रुक जाएगा, तब आपका स्मरण कैसे होगा?"

सिमरन का अर्थ भगवत्-स्मरण अथवा भगवन्नामस्मरण है। श्रीगुरु-ग्रन्थसाहिब में 'नाम सिमरन को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। "नाम का सारभूत तात्पर्य एकरसता है। इस अनुशासन के द्वारा भक्त स्वयं को उत्तरोत्तर ईश्वर से जोड़ता है।"[१३] 'नाम' शब्द अपने आप ही हमारा ध्यान सच्चे नाम – ईश्वर के नाम की ओर आकर्षित करता है। यद्यपि परमात्मा सभी नामों से ऊपर और परे है, तथापि ग्रन्थसाहिब में उसे विभिन्न नामों, यथा – राम, रघुनाथ, रघुपति, रघुराय, नारायण, हरि, ईश, ईसुरु, शारङ्गपाणि, गोविन्द, गोपाल राय, माधव, मुरारि, बीठल (बिट्ठल), बिसुंभर (विश्वम्भर), अल्लाह, खुदा, इत्यादि से सम्बोधित किया गया है। इनमें से कई नाम तो हमें सगुण-साकार परमात्मा का स्मरण दिलाते हैं। भक्ति का मूल भाव तो सिमरन ही है।

४. आत्मसमर्पण : शरणागति

पाँचवें गुरु श्री गुरु अर्जन देव कहते हैं – हे ठाकुर ! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ, तुम्हारा दर्शन पाकर मेरे मन के सब संशय दूर हो गये हैं। मेरे बिना कहे ही तुमने मेरी पीड़ा को जान लिया है और अपना नाम जपवाया है। मेरे सब दुख दूर हो गए हैं, सभी सुख स्वयमेव मेरे भीतर आ बसे हैं और मैं उस अनन्त प्रभु का गुणगान करने लगा हूँ। (हे परमेश्वर!) तुमने मुझे माया के अंधकूप से बाँह पकड़ कर निकाल लिया है। नानक कहते हैं, गुरु ने मेरे सारे बंधन काट दिए हैं और मुझे उससे मिला दिया है, जिससे मैं बिछड़ा हुआ था :

ठाकुर तुम्ह सरणाई आहूआ।।
उतरि गइओ मेरे मन का संसा
जब ते दरसनु पाइआ।।१।। रहाउ।।
अनबोलत मेरी बिरथा जानी अपना नामु जपाइआ।
दुख नाठे सुख सहज समाए अनद अनद गुण गाइआ।।१।।
बाह पकरि कढि लीने अपुने ग्रिह अंधकूप ते माइआ।।
कहु नानक गुरि बंधन काटे बिछुरत आन मिलाइआ।।२।।[१४]

गुरु रामदास शरणागति की याचना करते हैं।[१५] रविदासिया पंथ के प्रवर्तक गुरु रविदास (अथवा रैदास) जी, जिनकी बाणी ग्रंथसाहिब में सम्मिलित है, कहते हैं, "ऊँच हो या नीच, जो भी ईश्वर की शरण ग्रहण करता है, उस पर बुरे कर्मों का भार नहीं रहता और वह संसार सागर को पार कर लेता हैं।"

जो तेरी सरनागता तिन नाही भारु।।
ऊच नीच तुम ते तरे आलजु संसारु।।२।।[१६]

श्री गुरुनानक देव कहते हैं –

ठंठै ठाढि बरती तिन अंतरि हरि चरणी जिन्ह का चितु लागा।।

चितु लागा सोई जन निसतरे तु परसादी सुखु पाइआ।।[१७]

जिनका मन हरि-चरणों में लग गया, उनका हृदय शीतल हो गया। उन चरणों में जिनका मन लग गया, वे मुक्त हो गए। प्रभु की कृपा से उन्हें परमानन्द की प्राप्ति हो गई।

श्रीरामचरितमानस में विभीषण श्रीराम की शरण में आकर कहते हैं, ''मैं अपने कानों से आपका सुयश सुन कर आया हूँ। हे जन्म-मृत्यु के भय के नाशक! हे शरणागतों को सुख देने वाले! मेरी रक्षा करो! मेरी रक्षा करो!'' –

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन, सरन सुखद रघुबीर।।[१८]

गुरु ग्रन्थ साहिब के पृष्ठ प्रेम, भक्ति, सिमरन और शरणागति के भावों से भरे पड़े हैं। इनका पारस्परिक सम्बन्ध सामञ्जस्य और सम्मिलन इतना व्यापक, सुन्दर और प्रगाढ़ है कि इन्हें एक-दूसरे से अलग करके न देखा जा सकता है, न समझा ही जा सकता है।

५. नदिर, नदरि, नज़र – कृपा-दृष्टि

डब्ल्यू.एच. मकलिओड ने कहा है[१९] – ''गुरु नानक की दृष्टि में मानव अस्तित्व का अर्थ और उद्देश्य उस शाश्वत सत्ता के भगवदीय अस्तित्व में ही केन्द्रित है, जो स्रष्टा, पालक और संहर्ता है; वह जो सृष्टि की रचना करके स्वयं को उस रचना में ही अभिव्यक्ति करता है, वह जो अपनी कृपा से मनुष्य को मोक्ष के उपाय बताता है और फिर उस मोक्ष को अपनाने की संवेदना का सृजन करता है।'' नानक के दृष्टिकोण की व्याख्या करते हुए, मकलिओड आगे कहते हैं – ''यह सृष्टि निश्चय ही ईश्वर के अस्तित्व को अनिवार्य रूप से दर्शाती है, पर इस का प्रकट रूप से अनुभव और आभास जिन प्राकृतिक तत्त्वों के द्वारा होता है, वे सभी ईश्वर की कृपा से ही सुलभ होते हैं, ईश्वर जो न केवल सृष्टि में व्याप्त है, अपितु उससे परे भी है।''

यह वाणी ऋग्वेद के उन प्रसिद्ध मंत्रों का स्मरण दिलाती प्रतीत होती है, जिनमें कहा गया है –

स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।
एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पुरुषः।।[२०]

– ''उस पुरुष ने सब ओर से सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त कर लिया और फिर स्वयं तो इससे भी महत्तर है।''

यह उसकी कृपा ही है कि वह स्वयं को प्रकट करता और मनुष्य को मुक्ति का पथ दिखलाता है। कैसे? श्रीगुरुरामदास कहते हैं –

क्रिपा क्रिपा करि दीन प्रभ सरनी
मो कउ हरि जन मेलि पिआरे।
नानक दासनि दासु कहत है
हम दासन के पनिहारे।।[२१]

– ''प्रभु ने अपनी आत्यन्तिक कृपा से मुझे अपनी शरण में स्वीकार किया और हरिभक्तों से मिलाया। दासानुदास नानक कहते हैं कि हम तो ईश्वर के दासों को पानी पिलाने की सेवा करने वाले हैं।''

नदिर शब्द का प्रयोग गुरू ग्रन्थ सहिब में बहुत बार हुआ है। इसका अर्थ है कृपादृष्टि, दया की एक नज़र। गुरुनानक ने कहा है कि कपड़े (सांसारिक पदार्थ) तो मनुष्य अपने कर्मो के अनुसार प्राप्त करता है, पर मोक्ष-द्वार में प्रवेश हेतु उसकी 'नदरी' – कृपादृष्टि की ही आवश्यकता है – **करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआर।।**[२२]

गुरु अमरदास का कथन है – **नानक नदरी पाईऐ सचु नामु गुण तासु।।**[२३] –''उसकी कृपा से ही सच्चे नाम की प्राप्ति तथा उसके गुणों से परिचय प्राप्त होता है।''

बलवन्त सिंह आनन्द ने लिखा है – ''सिमरन और ध्यान का महत्त्व होते हुए भी, गुरु नानक ने नदिर - ईश्वरीय कृपा – को ऊँचा स्थान दिया है। मानव जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष तो ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त होता है। मनुष्य को धैर्य पूर्वक प्रतीक्षा करनी चाहिए, वह अनन्त परमात्मा जीव को मुक्त करने का उपाय स्वयमेव करते हैं''।[२४]

भाव यह है कि भक्ति कोई कर्म-कलाप नहीं है, जिससे मनुष्य के अहंकार का पोषण होता हो। यह तो चिरन्तन प्रेम और परमात्मा तथा उसके नाम में एकाग्र निष्ठा की स्थिति है। सच्चा भक्त तो द्वार भी नहीं खटखटाता; मोक्ष का द्वार उसके लिये खुले, इसके लिए वह ईश्वर की कृपा पर आश्रित रहता है। 'मैं तो बस तुझसे प्रेम करता हूँ, क्योंकि मैं तो बस तुमसे प्रेम ही करता हूँ'।

श्रीगुरुग्रन्थ साहिब में नवधा भक्ति

श्रीगुरु अर्जन देव कहते हैं, भगति नवै परकारा:।[२५] श्रीमद्भागवत में प्रह्लाद ने भी नवधा भक्ति का उल्लेख किया है –

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।[२६]

– भगवान विष्णु के नाम-गुणों का श्रवण करना, सामूहिक संकीर्तन - नामगान, स्मरण, भगवान के चरणों की सेवा, पूजा, वन्दना, दासता, सखाभाव और आत्मसमर्पण, यह नौ प्रकार की भक्ति है।

इसी नवधा भक्ति का वर्णन गुरु अर्जन देव निम्न प्रकार से करते हैं : [२७]

१. **श्रवणं – स्रवणी सुणउ विमल जसु सुआमी** – हे स्वामी! मैं अपने कानों से आपका निर्मल यश श्रवण करूँ।

२. **कीर्तनं – रसना गुण गावै हरि तेरे** – हे हरि! मेरी जिह्वा आपके गुणों का गान करे।

३. **स्मरणं – सिमरि सिमरि सुआमी मनु जीवै** – हे स्वामी! मेरा मन आपका स्मरण करते हुए ही जीवन यापन करे।

४. **पादसेवनं – चरन कमल जपि बोहिथि चरीऐ।।**
संतसंगि मिलि सागरु तरीऐ।।

– हे प्रभु! मैं आपके चरण कमल रूपी जहाज पर सवार होकर संतों की संगति में भव सागर पार करूँ।

५-६. **अर्चनं-वन्दनं – अरचा बंदन हरि समत निवासी बाहुड़िजोनि न नंगना** – अर्चना और वन्दना करते हुए हम श्रीहरि की सन्निधि में रहें, ताकि जन्म-मरण के चक्र में फिर न आना पड़े।

७. **दास्यं – दास दासनु को करि लेहु गोपाला।।**
क्रिपा निधान दीन दइआला।।

– हे कृपानिधान, दीनबंधु गोपाल! मुझे अपने चरणों का दास बना लीजिए।

८. **सख्यं – सखा सहाई पूरन परमेसुर कदे न होवी भंगना** – हे पूर्ण परमेश्वर! आप ही सच्चे मित्र और सहायक हैं, जो मिलने के बाद कभी बिछड़ते नहीं।

९. **आत्मनिवेदनम् – मनु तनु अरपि धरि आगै।।**
जनम जनम का सोइआ जागै।।

– मैं अपना तन और मन श्रीहरि को समर्पित करता हूँ। जन्म-जन्मान्तर का सोया हुआ मैं, अब जाग गया हूँ।

इस प्रकार हमें गुरुग्रन्थ साहिब में भक्ति-सिद्धान्त के अद्भुत दर्शन होते हैं। इसके पृष्ठों में – जिन्हें इस गुरु की देह के अंगों के रूप में आदर प्राप्त है – भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और विवेक की सुन्दर मुक्ता-मणियाँ यत्र-तत्र, सर्वत्र दिखाई देती हैं। इनके प्रकाश में भक्तों को आध्यात्मिक दृष्टि प्राप्त होती है। तीन शताब्दियों से भी अधिक समय बीत जाने के पश्चात् श्रीगुरुग्रन्थ साहिब न केवल सिख-धर्म के अनुयायियों, अपितु ऐसे सभी साधकों का, जो भक्ति और सेवा-पथ के यात्री हैं, मार्गदर्शन कर रहा है, संसार का शायद एकमात्र धर्मग्रंथ जिसमें न केवल सिख गुरुओं की वाणी है, अपितु अन्यान्य धर्मों के भक्त-कवियों की रचनाएँ भी सम्मिलित हैं और जिसे शाश्वत, जीवित गुरु का सम्मान प्राप्त है। ○○○

सन्दर्भ सूत्र –

१. आदि-ग्रंथ के साहित्यिक पक्ष के संबंध में लेखक के निबंध – 'Place of Adigranth in Punjabi Literary Tradition' Prabuddha Bharat (Sept-Oct-2009) में दो भागों में प्रकाशित हुआ था। लेखक की, रूपा एंड कं. नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'सच की बाणी आखै गुरुनानक' (२००९) भी द्रष्टव्य।, **२.** बलवंत सिंह आनन्द – Guru Nanak and the Bhakti Movement (Guru Nanak and the Religious Thought, ed. Jaran Singh, Patiala, Punjabi University, 1990) P. 246 का हिन्दी-अनुवाद।, **३.** नारद भक्ति-सूत्र (Swami Tyagisananda. Madras, Sri Ramakrishna Math, 1955) p.1.15.6, **४.** ग्रंथ साहिब, असटपदी, महला१, राग सिरी, पृष्ठ ५९-६०, **५.** वही, पृष्ठ ६०, **६.** वही, आसा महला१, पृष्ठ ३४९, **७.** वही, सलोक, वारांते वधीक, महला१, पृष्ठ १४१२, **८.** वही, आसा महला१, पृष्ठ ४११, **९.** वही, बाणी भगत कबीरजी, पृष्ठ १२७४, **१०.** वही, जपुजी, पृष्ठ २, **११.** वही, बैराड़ी महला ४, पृष्ठ ७२०, **१२.** वही, मारू महला९, पृष्ठ १००८, **१३.** ह्य मकलिओड : "Sikhism" (A Cultural History of India, ed-A1 Basha Oxford University Press New Delhi 2008) P.297, **१४.** ग्रंथ साहिब, सारंग महला५, पृष्ठ १२१८, **१५.** वही, राग नट नाराइन, महला ४, पृष्ठ ९७५, **१६.** वही, बाणी भगत रविदास जी की, पृष्ठ ५८५, **१७.** वही आसा महला १, पृष्ठ ४३३, **१८.** रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, ४५, **१९.** Mcleod, W.H. : The teaching of Guru Nanak (Oxford University Press, 1976) p.150, 165, **२०.** ऋग्वेद १०.९०.१,३, **२१.** गुरु ग्रंथ साहिब, नट असटपदीआ, महला ४, पृष्ठ ९८०-८१, **२२.** वही, जपुजी, पृष्ठ २, **२३.** वही सिरीरागु, महला ३, पृष्ठ २६, **२४.** Balwant Singh Anand : Guru Nanak And the Bhakti Movement (Guru Nanak And Indian Religious thougth) p.247, **२५.** गुरु ग्रन्थ साहिब, रागु सिरी, महला ५, पृष्ठ ५, पृष्ठ ७१, **२६.** श्रीमद्भागवत ७.५.२३, **२७.** गुरुग्रन्थ साहिब, मारू महला ५, पृष्ठ १०८०.

भगवान श्रीरामकृष्णदेव की प्रासंगिकता

स्वामी गौतमानन्द

(स्वामी गौतमानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ उपाध्यक्ष और रामकृष्ण मठ चेन्नई के अध्यक्ष हैं। उन्होंने यह व्याख्यान ८ मई, २०१५ को विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में दिया था, जिसका अनुलेखन सुश्री क्षिप्रा वर्मा ने किया है। - सं.)

(गतांक से आगे)

हम आँखों से देखते हैं। आँखों के सामने तो सब स्पष्ट है, किन्तु इससे भी स्पष्ट कैसे दिखेगा? श्रीरामकृष्ण कहते है : "तुमको जैसा देखता हूँ, मैंने इससे भी अधिक स्पष्ट रूप से भगवान को देखा है।" उसका अर्थ है कि जो हम स्पष्ट सामने देख रहे हैं, वह तो थोड़ा ही आस-पास देख रहे हैं। इसमें हमारी आत्मा इन आँखों द्वारा किसी व्यक्ति को देखती है। ये आँखें एक परदे के जैसी हैं। इनके भीतर जाकर, इन्हें छेदकर आत्मा को पाना पड़ता है। तब आत्मा की शक्ति आगे देखती है, तब होता है – प्रत्यक्ष दर्शन। भगवान श्रीरामकृष्ण ने प्रत्यक्ष दर्शन को ही कहा, जिसमें आत्मा परमात्मा को सीधा देखती है। ठाकुर ने कहा, मैंने उस स्वरूप को देखा है। आत्मा के रूप में हमने ठीक परमात्मा को देखा है, जैसा तुमको देख रहा हूँ, उससे भी अधिक स्पष्ट रूप में देखा हूँ। श्रीरामकृष्ण की बातों को सुनकर नरेन्द्रनाथ अचम्भित रह गये। उन्होंने पहली बार किसी के मुँह से सुना – "मैंने ईश्वर को देखा है।"

इतना ही नहीं, ठाकुर ने कहा कि मैं तो तुमको भी दिखा सकता हूँ, किसी को भी दिखा सकता हूँ। भगवान के लिये रोना चाहिये। भगवान को व्याकुलता से पुकारना चाहिये। उनसे प्रार्थना करनी चाहिये। व्याकुलता से पुकारने पर हमारा मन, इंद्रियाँ एकाग्र हो जाती हैं। ऐसे एकाग्र मन से, ऐसे पवित्र मन से भगवान को देखा जाता है। कौन रोता है भगवान के लिये? इसीलिये तो भगवान को नही देख पाते हैं और कहते हैं, हमने देखा नहीं, हमने देखा नहीं। अरे कैसे देखेगा? ऐसा नहीं है कि हम व्याकुलता से नहीं रोते। श्रीरामकृष्ण देव उदाहरण देते हैं – हम सम्पत्ति के लिये रोते हैं, नाम, यश के लिये रोते हैं। बच्चे, पत्नी, पति के लिये रोते हैं। जिसके लिये रोते हैं, वह सब मिलता है। हम जैसा चाहते हैं, वैसा न मिले, पर कुछ तो मिलता है। जब पति मिलता है, तो फिर ऐसा पति क्यों मिला, कहकर पछताते हैं। तो जिसके लिये हम व्याकुल होते हैं, वह हमको अवश्य मिलता है। श्रीरामकृष्ण देव यही कहते हैं, भगवान के लिये कौन व्याकुल होता है? तुम व्याकुल होकर बुलाओ, तब भगवान मिलते हैं। मैंने ऐसे ही प्राप्त किया है और सभी को भी यह सिखा सकता हूँ। व्याकुलता कैसे आती है? श्रीरामकृष्ण देव भगवान को पाने के लिये 'व्याकुलता' को सबसे सरल उपाय बताते हैं। व्याकुल होकर तुम भगवान को पुकारो। जैसे बच्चा माँ को पुकारता है। जैसे लालची आदमी अपने पैसे के लिये रोता है। जैसे पतिव्रता पत्नी अपने पति के लिये रोती है। ऐसी व्याकुलता तुम्हारे अंदर आये, तो भगवान को प्राप्त कर सकोगे। सबसे सरल प्रार्थना में व्याकुलता इतनी जल्दी नहीं आती है। व्याकुलता का अर्थ है दिल से रोना। प्रभु तुम्हारे बिना मेरे प्राण नहीं रह सकते। मेरे प्राण-पखेरु उड़े जा रहे हैं, तुम्हें दर्शन देना ही होगा। ऐसा बोलते-बोलते, जब हृदय से दुखित होकर रोते हैं, वह व्याकुलता है। थोड़े उद्वेग से भगवान नहीं मिलेंगे। जैसे बच्चे को माँ के बिना चारों ओर अन्धकार दिखता है, ऐसी व्याकुलता होनी चाहिये।

यह व्याकुलता कैसे आयेगी? श्रीरामकृष्ण कहते हैं, ये व्याकुलता ऐसे थोड़े ही आती है। इसके लिये शुद्ध मन चाहिए। शुद्ध मन पाने के लिये कुछ साधनायें करनी पड़ती हैं। श्रीरामकृष्ण स्वामी विवेकानन्द जी को चारों योगों - ज्ञानयोग, भक्तियोग, राजयोग और कर्मयोग को सिखाते हैं। सभी अलग-अलग रास्ते हैं। जो जिसके योग्य है, उसको वही मार्ग सिखाना पड़ेगा। स्वामी विवेकानन्द ने सभी योगों, सभी मार्गों को सीखा। विश्व को उन्होंने चार योगों का उपदेश दिया, जिसको हम पढ़ सकते हैं।

भगवान श्रीरामकृष्ण कहते थे, धर्म एक विज्ञान है। धर्म

को विज्ञान बना दिया क्यों? उन्होंने कहा धर्म अनुभूति है – religion is realisation. भगवान को देखना धर्म है। भगवान को देखे बिना भगवान हैं, ऐसा बोलने से नहीं होता है। भगवान हैं, तो उन्हें देखना पड़ेगा। उनको देखने के लिये क्या करना पड़ेगा? जिन्होंने भगवान को देखा है, वैसे सद्‌गुरु के पास जाओ। जैसे आप रसायनविज्ञान सीखने के लिए रसायन-विभाग में जाकर आवेदन देते हैं। वहाँ के विभागाध्यक्ष या प्रोफेसर से संपर्क करते हैं। वे हमें उसके बारे में पढ़ाते हैं, प्रयोगशाला में ले जाकर प्रयोग कराते हैं। वह जैसा कहते हैं, वैसा हम करते हैं। तब अन्त में हम भी रसायनज्ञ बन जाते हैं। इसमें तीन-चार साल लग जाते हैं, तब हमें स्नातक की उपाधि मिलती है।

उसी प्रकार आध्यात्मिक विद्या अर्थात् भगवान को प्राप्त करने के लिए भगवान को प्राप्त किए हुए व्यक्ति के पास जाओ। उनके पास बैठो। उनसे जिज्ञासा करो। वे जैसा कहते हैं, वैसा करो। जैसे रसायन के प्रोफेसर कहते हैं, पुस्तकालय में आओ, ये सीसी लो, नलिका लो, एसिड लो, इसमें अलकोहल मिलाओ इत्यादि। वे जैसा बोलते हैं, वैसा सुनना पड़ेगा। तभी डिग्री मिलेगी, नहीं तो नहीं मिलेगी। वैसे ही गुरु के पास जाना पड़ेगा। गुरु जैसे बोलें, वैसा करना पड़ेगा। तब हमें भगवान मिलेंगे। तो कोई कहे कि हम गुरु के पास क्यों जाएँ? ये ऐसे बोलते हैं, जैसे रसायन प्रोफेसर के पास क्यों जाऊँ? अरे, नहीं जाने से Chemistry की डिग्री नहीं मिलेगी। तुमको यहाँ भगवान को प्राप्त करना हो, तो गुरु के पास जाकर उनकी आज्ञा का पालन करना होगा।

जो आध्यात्मिक विद्या सिखाते हैं, उन्हें गुरु कहते हैं। कोई गुरु ज्ञानयोग, कोई गुरु भक्तियोग, कोई गुरु कर्मयोग, कोई राजयोग सिखाते हैं। जिस मार्ग से उन्होंने भगवान को प्राप्त किया है, जिसे वे जानते हैं, उसे बताते हैं। उस हर सीढ़ी को वे जानते हैं कि कैसे सीढ़ी चढ़कर उस लक्ष्य तक पहुँच जाएँ। वे वहाँ पहुँचाने के लिये तैयार हैं। जब हम उनकी आज्ञानुसार चलेंगे, तभी लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। तब हमें भी अनुभव होता है।

श्रीरामकृष्ण देव ने तपस्या से हमें समझाया कि धर्म भी एक विज्ञान है। जैसे हम विज्ञान में गुरु की आज्ञा का पालन करते हैं, उसी प्रकार धर्म के बारे में भी करना चाहिये। वहाँ जाकर व्यर्थ की बातें करने से नहीं होगा। जैसे हम किसी डाक्टर को देखते हैं। वे बहुत अच्छे डाक्टर हैं। उनके पास जाकर कहते हैं - "डाक्टर साहब आप अच्छे डाक्टर हैं।" "हाँ, मैं अच्छा डाक्टर हूँ।" यदि हम बुद्धिमान होंगे, तो क्या कभी कहेंगे कि मुझे भी डाक्टर बना दीजिये?

क्योंकि डॉक्टर बनने की एक प्रक्रिया है। उसके लिए विश्वविद्यालय में जाना पड़ेगा, ६-७ साल मेडिकल कॉलेज में जाना पड़ेगा। सिनीयर डॉक्टर के अधीन रहकर सीखना पड़ेगा, उसकी डाँट खानी पड़ेगी। उसके बाद डिग्री मिलेगी। सबकी एक प्रणाली है। उसके अनुसार चलना पड़ेगा।

वैसे ही जब हम किसी महात्मा को देखते हैं, तब कोई बोलता है कि आप बड़े संत हैं, आप हमें भगवान को दिखा दीजिये कि वे कैसे हैं? भगवान को देखना माने डॉक्ट्रेट बनने जैसा है। डॉक्टर कोई एक दिन में बन जायेगा क्या? वैसे भगवान को पाने के लिए कम-से-कम पाँच-छः साल शिष्य बनकर उनके पास रहो। उनकी बातें सुनो। उनकी आज्ञानुसार साधना करो। तब न होगा।

श्रीरामकृष्ण देव ने आध्यात्मिक जगत के इस रहस्य को खोलकर रख दिया। तब लोग समझने लगे कि बिल्कुल ठीक है। श्रीरामकृष्ण देव ने कहा बिना देखे भगवान को स्वीकार मत करो। फिर देखने के लिये जो रास्ता है, उसको ठीक आदमी से सीख लो। उस रास्ते से चलो। उसके बाद अगर भगवान न मिलें, तब आकर बताओ कि भगवान झूठ हैं।

अज्ञानी लोग जो कहते हैं कि भगवान नहीं है, तो पूछता हूँ कि क्या आप किसी के बताए मार्ग से गये? किसी ध्यानयोग, भक्तियोग या राजयोग का अभ्यास किया, इसकी साधना की? बिना कोई साधना किए कह दिए। सेना के द्वारा सत्ता हथिया लिए, राजनैतिक सत्ताधारी बन गये थे, हमारे देश के स्वामी बन गये थे, बिना कुछ किए उन्होंने कहा भगवान नहीं है। तुम्हारा हिन्दू धर्म झूठ है। तब मूर्ख लोग उस पर विश्वास करने लगे। मैं कहता हूँ कि तुम कौन हो बताने वाले कि हिन्दू धर्म झूठ है? तुमने हिन्दू धर्म का अभ्यास किया है क्या कभी? श्रीरामकृष्ण देव ने हमको समझाया कि अज्ञानी लोग कहते हैं कि धर्म झूठ है, यह उनकी भूल है। जब वे इस रास्ते पर गये ही नहीं, उन्होंने कोई प्रयोग नहीं किया, गुरु की आज्ञा-पालन कर कुछ सीखा नहीं, तब वे कैसे कह सकते हैं कि धर्म झूठ है? तुम जिस रास्ते में गये ही नही हो, उसके बारे में तुमको बोलना ही नहीं है।

श्रीरामकृष्ण ने धर्म को विज्ञान के स्थान पर लाया। वैज्ञानिकता भी अनुभूति के ऊपर निर्भर है, मात्र विश्वास के ऊपर नहीं। वैसे ही जिन्होंने धर्म का ठीक-ठीक उपदेश दिया है, अपनी अनुभूति से दिया है। जैसे भगवान श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र को कहा – मैंने भगवान को देखा है और तुमको भी दिखा सकता हूँ। विज्ञान भी यही कहता है। विज्ञान को क्यों मानते हैं हम? पाश्चात्य देश में वैज्ञानिक कहते हैं कि हमने ये प्रयोग किया, तो हमें ऐसी वस्तु मिली। तुम लोगों को भी क्रमश: ऐसा करने से यह वस्तु मिलेगी। जो पाश्चात्य में, अमेरिका में वैज्ञानिक ने अपनी प्रयोगशाला में किया, उसी तरह हमारे प्रयोगशाला में हम करते हैं और वही वस्तु हमें मिलती है। तब हम कहते हैं, हाँ, विज्ञान ठीक है।

ठीक वैसे ही यहाँ भी जाँच करके उसी सत्य पर हम आगे बोल सकते हैं। श्रीरामकृष्ण देव ने इस युग में वही बात कही कि अच्छे गुरु के पास जाओ और उनकी आज्ञानुसार अपने अनुकूल योग की प्रक्रिया से भगवान की प्राप्ति के लिये चेष्टा करो। यदि तुम्हें भगवान न मिलें, तब तुम्हें कहने का अधिकार है कि भगवान नहीं है।

किन्तु ऐसा कभी नही हुआ। नास्तिक लोग भी भगवान श्रीरामकृष्ण की कृपा से आस्तिक बन गये।

नास्तिक कहते हैं – हम भगवान पर विश्वास नहीं करेंगे। श्रीरामकृष्ण ने कहा, तुम हमारे पास रहो, हम तुमको सिखायेंगे कि तुम ऐसा करो, तो तुम्हें मिलेगा और उन्होंने सिखाया, तो उसे भगवान के दर्शन हो गये। कितने गलत लोगों को भगवान का दर्शन हो गया। कितने गलत लोग भगवान श्रीरामकृष्ण के पास गये, उनको दर्शन मिला। दर्शन मिलने के बाद नास्तिक लोग आस्तिक बन गये। जैसे गिरीशचन्द्र घोष। ये पहले आध्यात्मिक लोगों की खिल्ली उड़ाते थे। किसी को मानते नहीं थे। कहते थे, अरे वे लोग तो बस नाचते-गाते हैं। किसी को कोई अनुभव नहीं है। भगवान ये सब कुछ भी नहीं है। एक दिन वे भगवान श्रीरामकृष्ण के पास आकर देखते हैं – वे साक्षात् भगवती से, देवी से बातें कर रहे हैं। गिरीशचन्द्र घोष अपने बारे में कहते हैं – ''मैं पापी हूँ। सारा कलकत्ता मुझे पापी के जैसा देखता है। जिस रास्ते से मैं जाता हूँ, उस रास्ते से कोई गुजरता नहीं है। मुझे इतना बड़ा पापी समझते हैं, इसलिए मैं पापी हूँ।'' श्रीरामकृष्ण कहते हैं – तुमको तो मैं पापी नहीं मानता हूँ। जैसे हम माँ काली की संतान हैं, वैसे ही तुम भी माँ काली की संतान हो, फिर तुम पापी कैसे? वे बार-बार कहने लगे, नहीं, मुझे समाज पापी कहता है। श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, समाज को कहने दो, हम तो नहीं कहेंगे। तुम भी तो उसी भगवान की सन्तान हो, जैसे मैं हूँ। तब गिरीशचन्द्र घोष सोचने लगते हैं कि ये कैसे महापुरुष हैं! सारी दुनिया मुझे पापी कहती है, मुझसे घृणा करती है और ये कहते हैं – तुम पापी नहीं हो, भगवती की सन्तान हो। ये सचमुच ही महात्मा हैं। इनकी ही शरण में जाना चाहिये। तब वे उनकी शरण में जाते हैं। श्रीरामकृष्ण उनका उपयुक्त शरणागति का मार्गदर्शन करते हैं। तुम अपने अहं को छोड़ो, तुम हमेशा समझो मैं तुम्हारे लिये सब कुछ करता हूँ। तुम्हारा अहं कभी नहीं बोलना चाहिए। मैंने किया है, ऐसा कभी नहीं बोलना। इस 'मैं' को पूर्णत: भूल जाओ। हमेशा सोचा तुम्हारे गुरु तुम्हारे लिये कर रहे हैं। उन्होंने सोचा, ये बहुत अच्छी बात है। अगर मुझे यह कहते हुए कि 'मैं कुछ भी नहीं हूँ, केवल तू ही तू है', कहते हुए मोक्ष मिल जाये, तब बहुत अच्छा है। यह बहुत आसान है। ठीक है महाराज, हम आपके शरणागत हो गये। अब 'मैं' नहीं कहूँगा। अब आप ही हमारे लिये कीजिए। श्रीरामकृष्ण कहते हैं – 'ठीक है, याद रखना। कभी 'मैं' ऐसा नहीं कहना। गिरीशचन्द्र इसे बहुत आसान समझ रहे थे। बाद में देखते हैं कि यह बड़ा कठिन है। उनके बहुत प्रिय लड़के के मर जाने के बाद उन्हें बहुत दुख हुआ। तब सोचते हैं, मैं तो दुख कर नहीं सकता। मैं कौन हूँ दुख करनेवाला? मेरा सब भार तो गुरुदेव पर है। मेरे गुरुदेव को दुख करना चाहिये। वे बेचारे थम-थम के अपने हृदय को रोक नहीं पाये। वे इतने सत्यनिष्ठ हैं कि मैंने गुरुदेव को वचन दिया है, तो मैं दुख क्यों करूँ? मैं लड़के के लिये दुख नहीं कर सकता। उनकी पत्नी मर गयी, तो रुलायी आ रही है, किन्तु रो नहीं सकते। मेरे गुरु मेरे लिये रोयेंगे। इस प्रकार अपने मन के दुख को रोककर इतना कष्ट सहते रहे, फिर भी बाहर रो नही पाये। ऐसी शरणागति के मार्ग पर वे चले। नहीं-नहीं करते, त्याग करना उनकी साधना हो गई। ऐसी साधना के कई वर्ष बाद वे कहते हैं – मेरे गुरुदेव की कृपा से मैं ऐसे ही चलता गया, अब मेरे अन्दर केवल भगवान हैं। मैं जब नीचे से ऊपर हाथ उठाता हूँ, तब ऐसा समझता हूँ कि यह मैं नहीं मेरे गुरु हाथ उठा रहे हैं। **(क्रमश:)**

आध्यात्मिक जिज्ञासा (४७)

स्वामी भूतेशानन्द

– महाराज! ऐसा भी हो सकता है कि वह जिस भाव से चल रहा है, वह ठीक नहीं हो रहा है या गलत मार्ग से जा रहा है।

महाराज – इसलिए तुम उसके ऊपर अपना भाव क्यों थोप दोगे? वह जिस मार्ग से चल रहा है या जिस भाव का अनुसरण कर रहा है, उसमें कुछ तो अच्छा है। उसे देखकर उसे उस दिशा में अग्रसर करने के लिये सहायता कर सकते हो। तुम्हें कैसे ज्ञान हुआ कि तुम्हारा मार्ग या तुम्हारा भाव ही ठीक है? स्वामीजी ने अभेदानन्दजी में अद्वैत भाव का संचार किया, तब ठाकुर ने उन्हें डाँटा था। क्योंकि उस समय वे अपने भाव में आगे बढ़ रहे थे। इससे उनका भाव पूरा नष्ट हो गया। ठाकुर की दी हुई इस शिक्षा को स्वामीजी ने हृदय से ग्रहण किया था। उनके परवर्ती जीवन में इसके कई उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं। अभी दो घटनाओं का स्मरण हो रहा है। इससे स्वामीजी कैसे दूसरों के भावानुसार उन सबकी सहायता करते थे, यह समझ में आयेगा। स्वामीजी ने मठ में नियम बनाया है – ''बहुत पढ़ना-लिखना होगा। स्वामी धीरानन्द ने जाकर स्वामीजी से कहा – ''स्वामीजी, मुझे तो पढ़ना-लिखना अच्छा नहीं लगता।'' स्वामीजी ने पूछा – ''तुम्हें क्या अच्छा लगता है?'' उन्होंने कहा – ''मुझे जप करना अच्छा लगता है।'' तब स्वामीजी ने कहा – ''तुम वही करो।'' और एक बार राहत-कार्य (रिलीफ) आरम्भ हुआ। इधर शुद्धानन्दजी को तपस्या करने जाने की बहुत इच्छा हुई। एक-दो गुरु-भाइयों से परामर्श करने पर उन लोगों ने कहा – ''सावधान! अभी यह सब बात स्वामीजी को मत कहना। स्वामीजी बिल्कुल रुष्ट हो जाएँगे। तुम्हारे ऊपर स्वामीजी कितना निर्भर रहते हैं! अभी तुम्हारे नहीं रहने से, क्या स्वामीजी दुखी नहीं होगें?'' किन्तु शुद्धानन्दजी के मन में प्रबल इच्छा थी। उसे वे और अधिक दबाकर नहीं रख पा रहे हैं। एक दिन उन्होंने स्वामीजी को कह ही दिया – ''स्वामीजी तपस्या करने जाने की बहुत इच्छा हो रही है।'' स्वामीजी सुनकर थोड़ी देर मौन रहे। उसके बाद उन्होंने कहा – ''क्या बहुत इच्छा हो रही है?'' ''हाँ, बहुत इच्छा हो रही है।'' स्वामीजी ने कहा – ''तब जाओ।'' देखो, स्वामीजी का उदार हृदय – यह जानकर भी की असुविधा होगी, किन्तु दूसरे के ऊपर अपने भाव को न थोपकर, उसके भाव में उसे अग्रसर कर रहे हैं।

स्वामी शुद्धानन्द

– महाराज! स्वामीजी जानते थे कि शुद्धानन्दजी इस सुअवसर का सदुपयोग करेंगे।

महाराज – जो भी हो, हमलोग होने पर कहेंगे – हाँ, क्या अभी तुम्हें तपस्या में जाने का समय हुआ? जाओ, नहीं होगा। राहत-कार्य में जाओ।

प्रश्न – महाराज! आध्यात्मिक जीवन में सफलता का क्या रहस्य है?

महाराज – रहस्य कुछ नहीं है। सीधी-सी बात है। तीव्र व्याकुलता और आन्तरिकता यही उपाय है। ठाकुर पूछ रहे हैं – तुम लोग कैसे प्रार्थना करते हो? क्या वैसा करने से होता है? ऐसा कहकर वे हाथ-पैर पटकते हुए शिशु के सामान रोने लगे। क्या हमलोगों को ऐसा लग रहा है? जब उनके (ईश्वर के) बिना जीवन निरर्थक लगने लगे, उसे व्याकुलता कहते हैं। ठाकुर ने जल में डूबाकर रखने की कहानी बताई थी। हमलोगों की जब वैसी अवस्था होगी, भगवान के बिना जब ऐसा बोध होगा, तभी समझना होगा कि समय हो गया है। तुमलोग अपने जीवन की बात ही सोचकर समझ सकते हो। यह जो तुमलोग घर-द्वार, परिवार छोड़कर आये हो, क्या यह कम बात है! किन्तु जैसी व्याकुलता, जैसा त्याग, भगवान के लिए करना चाहिए, उसकी तुलना में यह कुछ नहीं है। अपने जीवन में सबको कम-बेश एक समान कभी अनुभव हुआ था, व्याकुलता की तीव्रता कुछ-न-कुछ सबको थी। जैसे मैं अपनी बात कहता हूँ। घर से भाग रहा हूँ। पहनने के कपड़े को फेंककर दूसरा

चार हाथ का कपड़ा घुटने तक का पहन रहा हूँ। हावड़ा स्टेशन जाऊँगा। हाथ-पैर काँप रहा है, यदि कोई देख ले तो। देखो कैसी अवस्था थी!

– महाराज! यह व्याकुलता क्यों नहीं बढ़ती है?

महाराज – व्याकुलता नहीं बढ़ रही है, क्या इसे समझ पा रहे हो? हमलोगों के पास जो मूलधन है, उसका ही उपयोग करना होगा। जो नहीं है, उसके बारे में सोचने से क्या होगा? हमारे पास बड़ी धन-राशि नहीं है, तो क्या बैठे रहेंगे या जितना है, उसी का ठीक-ठीक उपयोग करेंगे? हमलोग बहुत अधिक मूलधन लेकर तो नहीं आये हैं, जैसाकि ठाकुर के अन्तरंग शिष्य लोग लेकर आये थे। उनलोगों का कैसा वैराग्य था! कैसी व्याकुलता थी! लेकिन प्रयास करते-करते हमलोग का भी एक दिन होगा, एक दिन व्याकुलता आयेगी! अभी नहीं तो बाद में होगी, इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में हो सकती है। (यह बात कहते-कहते महाराज बहुत गम्भीर हो गये। थोड़ी देर बाद कहते हैं) व्याकुलता की बात सोचकर मन खराब हो जाता है।

प्रश्न – महाराज! क्या शरणागति और आत्मसमर्पण दोनों एक ही है?

महाराज – एक ही है। शरणागति आने पर आत्मसमर्पण किया जाता है। फिर आत्मसमर्पण करने पर शरणागति आती है। कौन-सा पहले और कौन-सा बाद में नहीं कहा जा सकता। दोनों एक साथ ही होता है। शरणागति – आत्मसमर्पण क्या सरल बात है? थोड़ी-सी भी वासना रहने से शरणागति नहीं होती। जहाँ कामना व पाना शेष हो जाता है, वहीं शरणागति आती है। वे जैसा रखेंगे, यह भाव होता है।

कुछ दिनों से एक संन्यासी असन्तुष्ट थे। यह चर्चा करते समय उन संन्यासी ने पूजनीय महाराज को अपनी समस्या स्पष्ट रूप से बतायी। महाराज ने उनकी सारी बातें बड़े ध्यान से सहानुभूतिपूर्वक सुनकर कहा – देखो, हम सभी लोग अपूर्ण हैं, पूर्ण होने के लिये आये हैं। खूब आत्मविश्लेषण करो, तब हमलोग क्या कर रहे हैं, ठीक कर रहे हैं या खराब कर रहे हैं, पकड़ में आएगा। यह समझना कि ठाकुर ही उनलोगों के द्वारा तुमको वे सब बातें तुम्हारे कल्याण के लिए बोलवाए हैं। यद्यपि हमलोग हमेशा इसे नहीं स्वीकार कर पाते हैं। किन्तु सर्वदा आत्मविश्लेषण करने से समझ सकोगे कि गलती कहाँ हो रही है। ठाकुर को कहो। जैसे स्वामीजी कहते थे – जो आते हैं, वे सभी अच्छे हैं। अब इससे अधिक अच्छा होना होगा।

प्रश्न – महाराज! क्या भजन-कीर्तन का अर्थ केवल भगवान के नाम का कीर्तन और भजन गाना है? क्या इसमें जप नहीं आता है?

महाराज – हाँ, जप भी इसमें आता है। भगवान का नाम लेना, जप करना भी तो भजन-कीर्तन है। असली बात है कि जो ये सब प्रयास कर रहा है, ध्यान का अभ्यास कर रहा है, वही समझ सकेगा। नहीं तो, जो कुछ नहीं कर रहा है, वह कैसे समझेगा?

प्रश्न – राजा महाराज कह रहे हैं – 'वास्तविक शान्ति प्राप्त करने के लिये अशान्ति को खींचकर निकालना पड़ता है।'' इस कथन का क्या तात्पर्य है?

महाराज – यही तो बात है, वर्तमान अवस्था में अभी ठीक हूँ, ऐसा सोचकर बैठे रहने से किसी दिन भी शान्ति नहीं आयेगी। जब तक अभी ठीक हूँ, यह बोध रहेगा, तब तक प्रगति की कोई आशा नहीं है। वर्तमान जीवनधारा, वर्तमान अवस्था के मिथ्या-बोध नहीं होने तक कुछ भी नहीं होनेवाला है। **(क्रमशः)**

आजन्म ज्ञान-विज्ञान निष्णाताय महात्मने।
विज्ञानानन्दपादाय भूयो भूयो नमोऽस्तुते।।

जन्म से ही ज्ञानी, निष्पाप और शुद्ध चरित्र वाले महात्मा स्वामी विज्ञानानन्दजी के चरणों में हमारा बारम्बार प्रणाम।

बचपन में 'वर्णपरिचय' में जो कुछ पढ़ा है, उसी की जीवन में साधना करो। अर्थात् 'सदा सत्य बोलना चाहिए', 'दूसरो की चीज बिना पूछे लेना चोरी है' – यदि इन दो उपदेशों की भी साधना कर सको, तो भी सब कुछ आसान हो जाएगा।

– *स्वामी विज्ञानानन्द*

जगज्जननी जानकी

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उनके व्याख्यान को सम्पादित कर इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डॉ. राजलक्ष्मी वर्मा जी ने प्रस्तुत किया है ।– सं.)

मानस के प्रारम्भ में गोस्वामीजी भगवान श्रीराम की अर्द्धांगिनी और लीलासहचरी जानकीजी की वन्दना करते हुए कहते हैं —

जनकसुता जग जननि जानकी।
अतिसय प्रिय करुनानिधान की।।
ताके जुग पद कमल मनावउँ।
जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ।। १/१७/७

भगवान श्रीराम के चरित्र का गान करने के लिये गोस्वामीजी माता जानकी का आशीर्वाद चाहते हैं, क्योंकि वे श्रीराम को अतिशय प्रिय हैं। व्यक्ति को अपना आत्मस्वरूप

सर्वाधिक प्रिय होता है, शेष सभी वस्तुएँ उस आत्मस्वरूप के साथ सम्बन्ध होने के कारण ही प्रिय होती हैं, उसकी वजह से प्रिय होती हैं। जनकनन्दिनी सीताजी श्रीराम की आत्मभूता हैं, उनकी शक्ति हैं, तात्त्विक दृष्टि से वे श्रीराम से अभिन्न हैं। इसलिये वे श्रीराम को अत्यन्त प्रिय हैं। गोस्वामीजी श्रीसीताराम के चरणों की वन्दना करते हुए लिखते हैं।

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न।।
रामचरितमानस, १/१८/०

जो शब्द और अर्थ तथा जल और तरंग की भाँति भिन्न प्रतीत होते हुए भी वस्तुत: अभिन्न हैं और जिन्हें आर्त्तजन अत्यन्त प्रिय हैं, ऐसे श्रीराम और सीताजी के चरणयुगल की मैं वन्दना करता हूँ। सीताजी और श्रीराम के स्वरूप की व्याख्या करते हुए वे वाणी और अर्थ तथा जल और तरंग का उदाहरण देते हैं। शब्द के बिना अर्थ अभिव्यक्त नहीं हो सकता और अर्थ के बिना शब्द निरर्थक ध्वनिसमूह भर हैं, अर्थवान शब्द से ही ज्ञान या बोध उत्पन्न होता है। इसी तरह जल और उसकी तरंग आकार की दृष्टि से भले ही अलग-अलग प्रतीत

हों, किन्तु तरंग जल का ही एक रूप-विशेष है। जल ही तरंग के रूप में दिखता है, इसी प्रकार श्रीराम और सीताजी भले ही दो दिखलाई देते हों, पर वे एक ही हैं; वे एक ही परमतत्त्व की दो अभिव्यक्तियाँ हैं।

गोस्वामीजी सीताजी का उल्लेख तीन रूपों में करते हैं। वे उन्हें कभी शक्तिरूपा कहते हैं, कभी मायारूपिणी और कभी भक्तिस्वरूपा। ये तीनों ही संज्ञाएँ सीताजी के व्यक्तित्व के विभिन्न पार्श्वों को दर्शाती हैं। शक्तिरूप से वे उनकी वन्दना करते हुए कहते हैं –

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्।।
१/श्लोक ५

जो इस चराचर जगत को उत्पन्न करनेवाली, उसका पालन करनेवाली और अन्तत: उसका संहार करनेवाली हैं, जो जीवों के क्लेशों का हरणकरने वाली और सभी प्राणियों का सब प्रकार से कल्याण करनेवाली हैं, ऐसी श्रीराम की प्रिया को मैं प्रणाम करता हूँ। सीताजी परात्पर ब्रह्म श्रीराम की 'कार्यकरणात्मिका शक्ति' हैं, शक्ति और शक्तिमान में अभेद सम्बन्ध होता है। कोई भी व्यक्ति अपनी शक्ति के द्वारा ही विभिन्न कार्य करता है। यह शक्ति उससे अलग कोई वस्तु नहीं है तथा व्यक्ति के भीतर ही निवास करती है। इसी प्रकार ईश्वर भी अपनी शक्ति के द्वारा ही इस संसार की रचना करता है, उसका पालन और संहार करता है। परात्पर ब्रह्म जब-जब जीवों का कष्ट दूर करने के लिये अवतार ग्रहण करता है, तब-तब उसकी शक्ति भी उसके साथ अवतार ग्रहण करती है और उसके द्वारा ही विभिन्न अवतार-कार्य सम्पन्न होते हैं। भगवान

श्रीकृष्ण ने श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में इस सत्य का स्पष्ट निर्देश किया है। वे कहते हैं कि जब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म प्रबल हो जाता है तब-तब मैं साधुजनों की रक्षा, दुर्जनों के विनाश तथा धर्म की पुन: प्रतिष्ठा करने के लिये अविनाशी और अजन्मा होते हुए भी अपनी त्रिगुणात्मिका प्रकृति की उपाधि स्वीकार कर अपनी माया शक्ति के द्वारा प्रकट होता हूँ –

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युथानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे।।

(श्रीमद्‌भगवतगीता ४/६-८)

शंकर के साथ पार्वती, विष्णु के साथ लक्ष्मी, राम के साथ सीता और कृष्ण के साथ रुक्मिणी के अवतरण का यही रहस्य है। परब्रह्म के रामावतार के समय उसकी शक्ति ही सीता के रूप में प्रकट हुई है—

आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया ।
सोउ अवतरिहि मोरि यह माया ।। १/१५१/४

गोस्वामीजी ने स्थान-स्थान पर सीताजी की शक्तिरूपता की ओर संकेत किया है। सीता-स्वयंवर के प्रसंग में धनुष-भंग के पश्चात् जब महाराज दशरथ बारात लेकर जनकपुरी पहुँचे, तो सीताजी ने सभी सिद्धियों का आवाहन कर उन्हें बारात की अगवानी करने का आदेश दिया। बारात की सुन्दर स्वागत-व्यवस्था देखकर सभी महाराज जनक की प्रशंसा करने लगे, केवल श्रीराम ही यह जान सके कि वास्तव में यह सब किसके आदेश पर हो रहा है।

जानी सियँ बरात पुर आई।
कछु निज महिमा प्रगटि जनाई।।
हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाईं।
भूप पहुनई करन पठाईं।। १/३०५/७-८
बिभव भेद कछु कोउ न जाना।
सकल जनक कर करहिं बखाना।।
सिय महिमा रघुनायक जानी।
हरषे हृदयँ हेतु पहिचानी ।। १/३०६/२-३

राम-रावण युद्ध के समय कुम्भकर्ण ने भी सीताजी के वास्तविक स्वरूप की ओर संकेत करते हुए रावण की भर्त्सना की थी —

सुनि दसकंधर बचन तब कुंभकरन बिलखान।
जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान।।६/६२/०

रामराज्याभिषेक के अवसर पर भी अनेक बार श्रीराम और सीता का वर्णन गोस्वामीजी 'मानवतनुधारी' परब्रह्म और उसकी शक्ति के रूप में करते हैं –

श्री सहित दिनकर बंस भूषन काम बहु छबि सोहई।
नव अंबुधर बर गात अंबर पीत सुर मन मोहई।।
७/११/१३
जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुजबल हने।।
अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुख दहे।
जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे।।
७/१२/१

परब्रह्म या परमात्मा की इस शक्ति का एक और भी रूप है और वह है माया का। 'माया' का शाब्दिक अर्थ है 'जो वास्तव में नहीं है।' भक्ति-सिद्धान्त की दृष्टि से देखें, तो इसका तात्पर्य है ब्रह्म से स्वतंत्र जिसकी सत्ता नहीं है या जो ब्रह्म से भिन्न नहीं है, अभिन्न है। मायाशक्ति आवरण की सृष्टि करती है। वह ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को मानो ढक देती है और उस पर नामरूपात्मक इस दृश्य जगत का आरोपण कर देती है, जिससे जीव मोहग्रस्त होकर भ्रम में पड़ जाता है। वह संसार को तो देखता है, किन्तु संसार के रूप में जो दिखाई देता है उस ब्रह्म को नहीं पहचान पाता। गोस्वामीजी ने 'मानस' के मंगलाचरण में 'परब्रह्मस्वरूप' भगवान श्रीराम की इस मायाशक्ति का उल्लेख किया है –

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्।।
१/श्लोक ६

ब्रह्मादि देवता, असुरगण और यह समस्त संसार जिनकी माया शक्ति के वशीभूत है तथा जिनकी सत्ता के कारण ही यह चराचर जगत झूठा होता हुआ भी रज्जु में सर्प की भ्रान्ति की तरह सत्य प्रतीत होता है, उन विश्व के परम

शेष भाग पृष्ठ ५७३ पर

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (३५)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

१३ अगस्त, १९०० : श्रीमती ओली बुल को

बुद्धदेव ने कहा था – जीवन अपने स्वभाव से ही नारकीय है। मेरी समझ में नहीं आता कि मनुष्य इसे वर्षों पूर्व ही क्यों नहीं जान लेता। क्यों व्यक्ति की तरुणाई में सब कुछ आशा की स्वर्णिम आभा से आच्छन्न रहा करता है! व्यक्ति क्या काफी पहले से ही नहीं जान लेता कि सहसा उसे विस्मित करते हुए ही यह ज्ञान प्रकट होगा! क्योंकि व्यक्तिगत कष्ट इस जीवन को उतना भयंकर नहीं बनाता – वैसा कष्ट मेरे जीवन में बिल्कुल भी नहीं है। बल्कि यह (जीवन) भयंकर इस तथ्य के कारण है कि व्यक्ति का प्रत्येक कदम किसी मानव-जीवन को कुचलता है। मिठाई की एक दुकान में कुछ लोगों से इसलिये कठोर परिश्रम कराया जाता है, ताकि अन्य लोग उस सामग्री का रसास्वादन कर सकें। यह एक वास्तविक चित्र है।

सिस्टर निवेदिता

कहीं किसी मानवीय कामना का दमन किये बिना, हम ईश्वर तक की कामना नहीं कर सकते। हमें ऐसा कोई भी आनन्द नहीं मिलता, जो कष्ट में न परिणत हो जाय। 'मानवता चिर काल से एक सोने के सलीब पर लटकी हुई है।'

एक करोड़पति अपने स्वर्ण-भण्डार के प्रति सम्मोहित होकर उसे देखता है; और आखिरकार वह आतंकित होकर समझ जाता है कि यह एक भयंकर पापपुंज मात्र है। इस भयावह दु:स्वप्न का क्या कभी अन्त होगा? 'स्थान' का प्रलय में ध्वंस हो जाता है। तब हर स्थान एकाकार हो जाता है। परन्तु 'काल' की समाप्ति कब होगी?

परन्तु यह सब तो खोखली बातें मात्र हैं। कामना-वासना की जड़ें हमारे व्यक्तित्व की गहराइयों में, व्यक्ति के स्वभाव में फैली हुई हैं। मृत्यु भी क्या जीवन के ही समान है? मैं सोचती थी कि वह ऐसा ही है! मैं सोचती थी कि वह इतना ही सहज होगा! परन्तु बात ऐसी नहीं है। यहाँ तक कि दु:ख और सुख – एक नहीं हैं। व्यक्ति अल्प मात्रा में ही इनका अनुभव करने की क्षमता रखता है।

यह व्यक्ति के – केवल एक नहीं, बल्कि हजारों सपनों का टूटना है। एक के बाद दूसरा परदा उठता जाता है; और एक के बाद दूसरा दृश्य प्रकट होता जाता है। सत्ता का लोभ सुदूर क्षितिज तक फैला रहता है। मनुष्य कभी सत्य तक भला कैसे पहुँच सकता है?

दम्भ, परनिन्दा, आत्मश्लाघा, अहंकार, दूसरों के प्रति घृणा तथा दुर्भाव – ये कभी नहीं मरते! ये शायद – विलास-प्रीति की अपेक्षा कम निकृष्ट होंगे, परन्तु उसकी अपेक्षा इनका नाश २०,००० गुना अधिक कठिन है।

यह सब मैं क्यों सोचती हूँ? मैं नहीं जानती। परन्तु मुझे इन पर चर्चा करनी ही होगी।

हम सभी लोग मानो सूर्यास्त के समय एक कँटीले वन में आ पड़े हैं और इसमें से बाहर नहीं निकल सकते। दूसरों की सहायता करने के उन सपनों के मिथ्याभास – पूर्णत: निरर्थक हैं; दूसरों की सहायता करने के स्वप्न हमें और भी आगे आशा के दलदल की ओर ले जाते हैं। क्योंकि नरक के भीतर आनन्द पाना भला कैसे सम्भव है? यदि आनन्द न रहा, तो निश्चय ही सहायता भी नहीं हो सकती। व्यक्ति कुछ पाना नहीं चाहता (कम-से-कम अपने मिथ्याचार-वश विश्वास कर लेता है कि वह नहीं चाहता!) परन्तु देने का स्वप्न आसानी से नहीं मरता! खैर, देने की बात यहाँ छोड़ दी जाय, परन्तु कम-से-कम दूसरों के लिये कष्ट तो सहा ही जा सकता है! यह परिकल्पना भी कितनी तुच्छ है! परन्तु दूसरों के लिये सहने की आकांक्षा का बोध करना होगा। किसी एक विराट् तत्त्व का अस्तित्व है।

हम लोग अपनी असहायता तथा निराशा के बीच भी अपने प्रेम के विषय में सचेत रहते हैं। इन समस्त सीमाओं के परे जो है, हमें उसी के प्रति सचेत होना पड़ेगा। (सम्भवत:) ऐसा ही है। निश्चय ही हम उसके स्वरूप के विषय में नहीं जानते। यदि स्वामीजी किसी अलौकिक पद्धति से उसे प्रदान न करें, तो मैं उसकी उपलब्धि की आशा भी नहीं देखती। मैं केवल इतना ही जान सकी हूँ। ... वह वस्तु क्या वे मुझे प्रदान करेंगे?

अहा, प्रिय सेंट सारा! मैं तुम्हें कानों में बता रही हूँ – वे

नहीं दे सकते; क्योंकि मैं पहले भी उन्हें इसके लिये प्रयास करते देख चुकी हूँ। यदि वे दे पाते, तो पहले ही दे चुके होते। उनमें यह देने की शक्ति विद्यमान है, परन्तु ग्रहण करने की क्षमता हमारे स्वयं पर निर्भर करती है; और उसी का मुझमें अभाव है, सचमुच ही अभाव है।

क्या उसे पाने के लिये मुझे इतनी तीव्र व्याकुलता है कि उसके लिये मैं अपना सब कुछ खो सकूँ? यदि व्यक्ति अपने मन-प्राण या सुख-सुविधाओं (मेरा तात्पर्य वास्तविक सुख-सुविधाओं से है, जो बाह्य सुख-स्वाच्छं से भिन्न है, बिस्तर नरम हो या कठोर, निद्रा ही महत्त्वपूर्ण है, इसी को सुविधा कहेंगे) को त्याग दिया है? क्या उसने कामनाओं के प्रति मोह को त्याग दिया है? और उन लोगों ने – श्रीरामकृष्ण और स्वामीजी ने क्या त्याग किया है? बल्कि उन लोगों ने कौन-सा त्याग नहीं किया है? (अर्थात् सर्वस्व का त्याग किया है।)

स्वामीजी ने स्वयं ही मुझे बताया है कि अनुभूति की आकांक्षा उन पर 'बुखार के जैसे' सवार हो गयी थी, वे जहाँ कहीं भी रहते, उसी के लिये संघर्ष करते रहते – इसके लिये वे एक ही स्थान पर लगातार चौबीसों घण्टे निश्चल भाव से बैठे रहते। ऐसी आकांक्षा व्यक्ति में भला कहाँ दिखती है?

मुख से यह कहना कितना आसान है – मैं किसी भी प्रकार की मुक्ति नहीं चाहता, मैं सेवा करना, बलिदान हो जाना पसन्द करता हूँ! जब सेवा-सहायता की जरूरत नहीं रहेगी, बलिदान की आवश्यकता नहीं रहेगी, तब व्यक्ति मुक्ति के लिये साधना कर लेगा।

इस पत्र के विषय में किसी से कुछ न कहना। समझ में नहीं आता कि यह पत्र मैं लिख भी क्यों रही हूँ! ... ये सारी चीजें सत्य हैं और साथ मिथ्या ही भी। ऐसा ही है न!

सितम्बर, १९००

(इसके थोड़े दिनों बाद ही – १९०० ई. के सितम्बर में, श्रीमती ओली बुल के निमंत्रण पर स्वामीजी तथा भगिनी निवेदिता ने फ्रांस के ब्रिटानी नामक स्थान पर जाकर कुछ काल के लिये उनका आतिथ्य ग्रहण किया था। थोड़े दिनों बाद निवेदिता ने 'अपने भारतीय कार्य के लिये सहायक तथा सहायता संग्रह करने हेतु' इंग्लैंड जाने के लिये स्वामीजी से विदा ली। उस समय की उनकी स्मृतियों का वर्णन उनके 'स्वामी विवेकानन्द : जैसा उन्हें देखा' ग्रन्थ से इस प्रकार है –)

जब मैंने १९०० ई. के सितम्बर में, ब्रिटानी में उनसे विदाई ली, उस समय मैं अकेली इंग्लैंड जाने की तैयारी कर रही थी। यदि सम्भव हुआ, तो वहाँ मैं अपने भारतीय कार्य हेतु, मित्रों तथा संसाधनों की तलाश करना चाहती थी। अभी तक मुझे यह कल्पना भी नहीं थी कि वहाँ कितने दिन ठहरना होगा। मेरे पास कोई निश्चित योजना भी नहीं थी। कदाचित् उनके मन में यह विचार आया हो कि एक विदेशी कार्य हेतु, पुराने लोगों के सम्बन्ध बाधक हो सकते हैं। क्योंकि उन्होंने – इतने लोगों को वचन देकर पीछे हटते देखा था कि उनका मन सर्वदा किसी ऐसे अनुभव के लिये तैयार रहता था। अस्तु, उन्हें यह बात समझने में जरा भी भूल नहीं हुई कि शिष्या के भाग्य की दृष्टि से, वह एक महत्त्वपूर्ण क्षण था। ब्रिटानी में मेरे निवास की अन्तिम संध्या के समय, हमारा रात का भोजन थोड़ी देर पहले ही समाप्त हुआ था और अँधेरा छाने लगा था, सहसा मैंने लता-पादपों से घिरे अपने छोटे-से अध्ययन-कक्ष के द्वार पर उनकी आवाज सुनी। वे मुझे उद्यान में बुला रहे थे। मैंने बाहर आकर देखा कि वे अपने एक मित्र के साथ अपने लिये निर्दिष्ट कुटिया की ओर जा रहे हैं और मुझे आशीर्वाद देने के लिये मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

मुझे देखकर वे बोले, "मुसलमानों का एक विचित्र सम्प्रदाय है। सुना है, वे इतने कट्टर हैं कि शिशु का जन्म होते ही यह कहकर उसे रास्ते पर डाल देते हैं, 'यदि अल्ला ने तेरी सृष्टि की हो, तो मर जा; और यदि अली ने तेरी सृष्टि की हो, तो जीता रह।' वे लोग शिशु के प्रति जो कहते हैं, आज रात मैं तुमसे वही कहता हूँ, परन्तु ठीक उलटे रूप से – 'जगत् में प्रवेश करो और यदि तुम्हारी सृष्टि मैंने की हो, तो वहीं विनष्ट हो जाओ; परन्तु यदि जगदम्बा ने तुम्हारी सृष्टि की हो, तो जीवित रहो'!"

तथापि अगले दिन भोर होने के बाद, शीघ्र ही वे मुझे अलविदा कहने को फिर आ गये। अपने यूरोप-प्रवास के दौरान स्वामीजी के विषय में यही मेरी अन्तिम स्मृति है। किसान की मालवाही गाड़ी से जाते हुए, मैंने एक बार फिर मुड़कर देखा – प्रात:कालीन आकाश की पृष्ठभूमि में वे लेनियन के हमारे कुटीर के सामने के मार्ग पर, दोनों हाथ उठाये खड़े थे। यह उनके प्राच्य अभिवादन का और साथ ही आशीष देने का भी तरीका था।[१]

१. स्वामी विवेकानन्द: जैसा उन्हें देखा, भगिनी निवेदिता, नागपुर, प्रथम सं. २०१८, पृ.१३६-३७

नौनिहाल भारत के प्यारे

आनन्द तिवारी पौराणिक

नौनिहाल भारत के प्यारे ।
माँ की आँखों के तारे ।।
नन्हीं आँखों में तुम अपने ।
देख रहे उजियारे सपने ।।
प्रताप शिवा की तुम सन्तान ।
भगत सुभाष गुणों की खान ।।
नानक सूर, कबीर के बेटे ।

अनतस् में साहस को समेटे ।।
राहें कठिन मगर न रुकना ।
नहीं शत्रु के आगे झुकना ।।
भय आतंक घृणा मिटाने ।
भारत को समृद्ध बनाने ।।
बच्चों छोड़ो यह कायरता ।
सीखो वीरों की निर्भयता ।।
अमर राष्ट्र, अविजित राष्ट्र ।
स्वतन्त्र राष्ट्र, समृद्ध राष्ट्र ।।
यही स्वतन्त्रता का है मर्म ।
सबसे बड़ा है राष्ट्र धर्म ।।
साहस की है शक्ति बहुत ।
देशभक्ति-भाव, अद्‌भुत ।।

प्रिय की पूजा में निशिदिन

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

मन को कमजोर करो मत, तन भले जरठ हो जाये ।
प्रिय की पूजा में निशिदिन रहना मन-ज्योति जगाये ।।
मन का ही जीव-जगत से
है जन्म-जन्म का नाता,
छूटे तन, फिर भी मन तो
है संग जीव के जाता,
अनुकूल बली मन ही तो आशा के सुमन खिलाये ।
प्रिय की पूजा में निशिदिन रहना मन–ज्योति जगाये।।
संकल्प सत्य-शिव-सुन्दर
मन की करता रखवाली,
मन ही जीवन-उपवन का
बनता है मोहक माली,
मन की अतुलित महिमा का कोई भी पार न पाये।
प्रिय की पूजा में निशिदिन रहना मन-ज्योति जगाये ।।
उद्दीप्त बली मन से ही
मानव ने गगन छुआ है,
सब भाँति बली मन से ही
निर्धन भी मगन हुआ है ,
मन-हीन-जनों का जीवन दिन को भी रात बनाये।
प्रिय की पूजा में निशिदिन रहना मन-ज्योति-जगाये।।
मन ही मर जाये, तो फिर
जग में जीना, क्या जीना,
मन हार गया, यदि, तब तो
अमरित पीना, क्या पीना,
'मधुरेश' मार कर मन को जीवन में स्वाद न आये ।
प्रिय की पूजा में निशिदिन रहना मन-ज्योति जगाये।।

सारगाछी की स्मृतियाँ (८५)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

प्रश्न – 'यमेवैष वृणुते' – समर्पण यदि हो जाता है, तो फिर पुरुषार्थ का स्थान कहाँ है?

महाराज – हमेशा एक मनोभूमि से, एक स्तर से बात नहीं होती है। यह बात द्वैत के दृष्टिकोण से कही गई है। यदि तुम्हारा भाव 'ईश्वर जो करते हैं, वही मंगलमय है' रहे, तो पुरुषार्थ नहीं करते हुए बैठे रहो।

जन-साधारण के साथ कार्य करना बहुत कठिन है। एक बात को लेकर ही लोग उसे विकृत करने लगेंगे।

व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में सतर्क नहीं रहने पर संकटग्रस्त होना पड़ता है। खूब स्वस्थ मस्तिष्क वाले लोग दिखाई नहीं पड़ते। एक व्यक्ति पागल हो गए हैं। हमलोगों में भी कोई-कोई पागल हैं, किन्तु कार्य का दबाव न रहता, तो और लोग पागल हो जाते। हम लोगों के एक आश्रम में ही चारों आश्रम हैं – ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास। गृहस्थ लोग रजोगुणी साधु को पसन्द करते हैं।

केवल यहाँ की बात ही क्यों, सुनो हमारे जमाने की बात। बचपन में पाठशाला में भर्ती हुआ। कैसे पंडित! उनकी कैसी पढ़ाई! हमारे घर में तीन पीढ़ी से वह परम्परा बंद है। यद्यपि बड़े भाई लोग चंडी पाठ करते, दुर्गापूजा करते, किन्तु वे एक अक्षर भी पहचान नहीं पाते। पिताजी की बहुत सम्पत्ति थी, सुरापान करते-करते सब खो दिया। घर में महोत्सव होता, महिलाओं के कष्ट की सीमा नहीं थी। कुलगुरु के पुत्रगण जैसी पूजा करते, उसे देखने पर उन्हें पीटने की इच्छा होगी! उसके बाद स्कूल में भर्ती हुआ। कक्षा पाँच में एक शिक्षक भूगोल पढ़ाते थे, वह भी अँग्रेजी में। कोई समझता नहीं था, सभी कंठस्थ कर लेते थे। मेरे द्वारा अर्थ पूछने पर डाँट दिया। एक दूसरे शिक्षक बहुत बुद्धिमान थे, पढ़ाते भी अच्छा थे। किन्तु मैंने सुना कि उनका चरित्र खराब था। किन्तु इसी बीच मैंने बंकिमचन्द्र की सभी पुस्तकें पढ़ डाली थीं। क्योंकि वे सब पुस्तकें पता नहीं कैसे मेरे हाथों में आ जाती थीं!

बायें स्वामी माधवानन्द तथा दायें स्वामी प्रेमेशानन्द

इसी प्रकार सेकेण्ड डिवीजन में एन्ट्रैन्स परीक्षा (कक्षा १०) पास कर लिया। पढ़ाई-लिखाई तो विशेष कुछ करता नहीं था। कक्षा में थर्ड आता था। फर्स्ट-सेकण्ड दो ब्राह्मण होते थे। वे सर्वप्रिय लड़के थे। संसार में दाएँ-बाएँ नहीं देखते थे। स्कूल के कई बच्चे खराब स्थानों में घूम-फिर कर आकर हमलोगों के पास सब कहानी सुनाते!

ज्योंहि मैंने एन्ट्रेन्स पास किया, तुरन्त ही सभी ने चारों ओर से घेर लिया, कोई कहता था – दरोगा बनो, यही सब। उस समय एन्ट्रेन्स पास करके लॉ (कानून) की पढ़ाई होती थी। उसे ही निश्चिन्त होकर पढ़ने लगा। एक भी पुस्तक नहीं खरीदी। क्लास करता था। प्रोफेसर लोग मूर्ख लगते थे। १९०७ ई. में मास्टर महाशय के पास आया। तत्पश्चात् ठाकुर का नाम सुनकर पगला गया, इसका प्रचार करना होगा। पहले-पहल तो कोई भी महत्त्व नहीं देता था। कौन महत्त्व देगा? समाजिक मर्यादा तो कुछ थी नहीं, ग्राम के जमींदार के गुरु का पुत्र था! बहुत प्रयत्न करके तहसील में भाषण आदि करते-करते सौम्यानन्द आदि जैसे कुछ युवकों को जुटा पाया। गाँव-देहात में अच्छे युवक थे ही नहीं। तत्पश्चात् एक अभियान आरम्भ किया।

मैं गाँव के वकील, अध्यापक और विश्वविद्यालय के शिक्षितों की बहुत निन्दा करता। इसीलिए वे लोग आश्रम में आकर मुझे बहुत डाँटते-फटकारते। मैं चुपचाप बैठकर केवल देखता रहता।

शेष भाग पृष्ठ ५७० पर

जीवन का नव प्रभात : उत्साह

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

१८ नवम्बर, १९६२ को रेजांगला पर १३वीं कुमाऊँ रेजीमेंट तैनात थी। इस रेजीमेंट में यादव को ही लिया जाता है, इसलिए इस रेजीमेंट को 'वीर अहीर' भी कहा जाता है। सुबह की पहली किरण के समय ही चीनी सीमा में कुछ हलचल दिखाई दी। लग रहा था लालटेन लिए भारतीय सीमा में कोई सेना घुसने का प्रयास कर रही है। मेजर शैतान सिंह ने गोलियाँ चलाने का आदेश दिया। पर कुछ ही देर में दृश्य बदल गया। वह कोई सेना नहीं थी, बल्कि सिर पर लालटेन लटका कर याकों को छोड़ा गया था। तब रेजीमेंट के १२० जवान सीमा पर थे। उनके पास लगभग ४०० गोलियाँ और १००० हथगोले थे। बन्दूकें पुरानी किस्म की थीं, जिसमें एक बार में एक ही गोली चलाई जा सकती थी। ऐसी स्थिति में चीनी सेना ने भारतीय सेना की गोलियों को नष्ट करने के लिए याकों को छोड़ा था। पीछे विशाल चीनी सेना आ रही थी। मेजर शैतान सिंह ने वायरलेस पर अपने वरिष्ठ अधिकारी से सम्पर्क किया। वरिष्ठ अधिकारी ने कहा कि वे तत्काल सहायता

नहीं भेज सकते, अत: तैनात सिपाही वापस आ जाएँ। तब मेजर ने अपने जवानों की सभा बुलाई और कहा कि वरिष्ठ अधिकारी से उनकी बात हुई है। उन्होंने वापस आने को कहा है, पर मैं पीठ नहीं दिखाऊँगा। यदि कोई जवान वापस जाना चाहे, तो वह जा सकता है। ऐसी विषम परिस्थिति में जब चारों ओर से समस्याएँ ही समस्याएँ थीं, एक ओर

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नाय भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।। गीता २/२०

(यह आत्मा कभी जन्म ग्रहण नहीं करती या मरती भी नहीं अथवा ऐसा भी नहीं कि एक बार हो कर फिर नहीं होती। जन्म-रहित, मृत्यु-रहित, नित्य तथा सनातन यह आत्मा देह के नष्ट होने पर नष्ट नहीं होती।) (गीता का यह श्लोक अहिर धाम के शिलालेख पर लिखा हुआ है।)

कड़ाके की ठंड तो दूसरी ओर अस्त्र और जवानों की अत्यंत कम संख्या और न ही किसी सहायता की कोई आशा थी। उस समय युद्ध करने का अर्थ मात्र मृत्यु का आलिंगन करना था। तब भी जवानों का उत्साह कम न हुआ और उन सबने मेजर का साथ देने का निर्णय लिया। दस-दस चीनी सिपाहियों से एक जवान लड़ रहा था। मेजर के हाथ रक्त से सने हुए थे। हाथ पूरी तरह अक्षम हो चुका था। तब सेना के दो सिपाहियों ने उन्हें चिकित्सा के लिए जाने का आग्रह किया। चिकित्सा हेतु जाने के लिए उन्हें पहाड़ से नीचे उतरना पड़ता और इसके लिए वे तैयार नहीं हुए। उन्होंने उन दोनों से कहा कि मेरे पैरों में मशीनगन बांध दो और तुम दोनों नीचे जाकर वरिष्ठ अधिकारियों से यहाँ की स्थिति से अवगत कराओ। मेजर सहित ११४ जवान शहीद हो गए। ३ महीने बाद बर्फ पिघलने पर उन जवानों का पार्थिव शरीर पाया गया। तब भी मेजर के पैरों में मशीनगन बंधी हुई थी और युद्ध में शहीद जवानों की उंगलियाँ बन्दूक के ट्रिगर पर थीं। मेजर शैतान सिंह को मरणोपरांत राष्ट्र के सबसे बड़े वीरता पुरस्कार 'परमवीर चक्र' से सम्मानित किया गया। ११४ जवानों के वीरता स्थान रेजांगला को

अब 'अहीर धाम' के नाम से जाना जाता है। देश प्रेम के उत्साह से पूर्ण ये वीर हमें उत्साह की प्रेरणा देते हैं।

ऐसा उत्साह जो संकट में भी कम न हो।

ऐसा उत्साह जो सुविधाओं के अभाव में भी कम न हो।

ऐसा उत्साह जो सहयोग के अभाव में भी कम न हो।

ऐसा उत्साह जो कष्ट पाने पर भी कम न हो।

ऐसा उत्साह जो मृत्यु के मुख में जाते हुए भी कम न हो।

उत्साह! उत्साह! उत्साह! अंतिम साँसों तक प्रयास का उत्साह।

जीवन संग्राम में विजयी होने के लिए उत्साह की परमावश्यकता होती है। आइए इसके कारण और निवारण के विषय में हम उत्साह से चिंतन करें –

उत्साह, आवेश और हतोत्साह – उत्साह वह मनोवृति है, जिसके फलस्वरूप मनुष्य प्रसन्नता और तत्परतापूर्वक कोई कार्य करने को प्रेरित होता है। उत्साह आवेश नहीं है। उत्साह में निर्णय प्रसन्नतापूर्वक लिए जाते हैं, जबकि आवेश में क्रोधित होकर। आवेशपूर्ण कार्य क्षतिकारक हो सकते हैं, क्योंकि आवेश में विवेक का स्थान नहीं के बराबर माना जा सकता है, वहीं उत्साह में विवेक एक सकारात्मक भाव के रूप में आता है और यह सृजनात्मक होता है। उत्साह विहीन होना ही हतोत्साह है। वेद कहते हैं –

अभागः सन्नप परेतो अस्मि
तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीडाहं
स्वा तनूर्बलदावा न एही।[१]

अर्थात् जिसके पास यह उत्साह नहीं होता है, वह निष्क्रिय हो जाता है। इसलिए प्रत्येक मानव को चाहिए कि वह अपने मन में उत्साह धारण करे तथा बलशाली बने।

जब व्यक्ति में उत्साह कम हो जाता है, तो वह दुर्बल हो जाता है। दुर्बलता के कारण उसकी कार्य की इच्छा और पुरुषार्थ की शक्ति भी क्षीण हो जाती है और तब व्यक्ति अपने लक्ष्य से दूर हो जाता है। उत्साह हमारे कार्य का ईंधन होता है। जिस प्रकार प्राण विहीन होने पर प्राणी को मृत कहा जाता है, उसी प्रकार उत्साह विहीन व्यक्ति भी मृतप्राय ही रह जाता है। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, 'इस जीवन में जो सर्वदा हताश रहते हैं, उनसे कोई भी कार्य नहीं हो सकता, वे जन्म-जन्मान्तर से 'हाय हाय' करते हुए आते हैं और चले जाते हैं। वीर भोग्या वसुन्धरा अर्थात् वीर लोग ही वसुन्धरा का भोग करते हैं, यह वचन नितान्त सत्य है। वीर बनो।'[२]

संस्कार – जीवन में ऐसा कई बार होता है कि हम लक्ष्य बनाते हैं, कुछ अच्छा करने की सोचते हैं और कभी-कभी हम कुछ दिन उसे करने का प्रयास भी करते हैं, परन्तु कुछ दिनों के बाद हमारा वह उत्साह वैसा नहीं रहता, जैसा पहले था। हम तब भी चाहते हैं, समझते हैं, पर कर नहीं पाते, क्योंकि वह उत्साह अब ठंडा पड़ चुका है। अब प्रश्न यह है कि उत्साह ठंडा क्यों हो गया? इसके विभिन्न कारण हैं, जिसमें प्रमुख है – हमारा संस्कार। हमारे पुराने संस्कार हमें पीछे खींचते हैं। संस्कार और परिवर्तन लाने के प्रयास के बीच जिनके उत्साह का पलड़ा भारी होगा, वे ही परिवर्तन ला पाते हैं। उदाहरण हेतु अधिकांश विद्यार्थी नियम बनाते हैं कि वे सुबह उठकर पढ़ाई करेंगे, लेकिन अगले दिन सुबह उठकर उन्हें इच्छा होती है कि मोबाइल में आए हुए संदेशों को एक बार देखें और इस प्रकार संदेशों को देखते हुए उनका बहुत-सा समय व्यतीत हो जाता है। बाद में उन्हें पश्चात्ताप भी होता है, पर यह सिलसिला जारी ही रहता है। 'जब जागे तभी सवेरा' अत: हमें अपने संस्कारों को बदलने की दृढ़ता रखनी चाहिए। विफल होने पर भी हमें बार-बार अपने संस्कारों को बदलने का प्रयास करते रहना चाहिए।

उबाऊ – जब हम कोई कार्य आरम्भ करते हैं, तो उसमें अत्यन्त उत्साह होता है। पर बार-बार उसी कार्य को करते-करते या तो वह उबाऊ हो जाता है या कार्य भाव-प्रधान न होकर यन्त्रवत् होने लगता है। एक शासकीय कर्मचारी कंप्यूटर में ई-मेलों से पत्र-व्यवहार का कार्य किया करता था। प्रतिदिन आनेवाले पत्रों को विभाजित कर उसने कुछ निश्चित उत्तर बना लिये थे। जिसमें वह तिथि, पता, खाते नंबर आदि बदलकर उत्तर दिया करता था। ऐसे ही एक दिन उसने सारे पत्रों के उत्तर भेज डाले। तत्पश्चात् उसे ज्ञात हुआ कि उसने प्रतिदिन की भाँति उत्तरों को कट-कापी-पेस्ट करते हुए एक व्यक्ति का बैंक विवरण सबके पास भेज दिया है। उसके ऐसा करने के कारण उसे निलम्बित कर दिया गया। कारण यह था कि वह प्रतिदिन एक ही प्रकार के कार्य को करते-करते उसे मशीन की भाँति

करने लगा था। अत: हमें उबाऊपन से बचने के लिए या तो सदा उस कार्य के भाव को स्मरण रखना होगा या उस कार्य को अपने लक्ष्य से जोड़ लेना होगा, जिससे उबाऊपन दूर हो और हम उत्साहित होकर कार्य में जुट सकें। उत्साहित होकर एक प्रकार के कार्य को करते रहने पर भी वह कभी उबाऊ नहीं होगा, बल्कि हम उस कार्य में दक्षता प्राप्त कर सकेंगे।

लक्ष्य – यदि व्यक्ति को अपने लक्ष्य के प्रति दृढ़ता न हो, तो उसे उस कार्य में कभी उत्साह नहीं रहता। लक्ष्य का बारम्बार स्मरण भी उत्साह को जागृत रखता है। जिन्हें अपने लक्ष्य को पाने की दृढ़ता होती है, वे विपरीत परिस्थितियों में भी हतोत्साहित नहीं होते। जिन्हें लक्ष्य पाने का जुनून सवार हो जाए, तो उनका उत्साह बढ़ता ही जाता है। मुकेश बारहवीं कक्षा का छात्र था। वह प्रत्येक कार्य के प्रति निष्ठावान था। पर अब वह असमंजस में था कि उसे भविष्य में क्या बनना है और उसे किस क्षेत्र में पढ़ाई करनी चाहिए? वह उत्साही तो था, पर उस उत्साह को किस दिशा में लगाएँ, इसी प्रश्न के उत्तर पाने तक वह अपने उत्साह का प्रयोग ही नहीं कर पा रहा था। अत: उत्साह के लिए हमें एक लक्ष्य की नितान्त आवश्यकता भी है। यदि व्यक्ति लक्ष्यहीन हो, तो वह किस दिशा में कार्य करने को उत्साहित होगा?

समस्याएँ – कभी-कभी समस्याएँ हमारे उत्साह को तोड़ने लगती हैं। ऐसे समय में हमें अत्यन्त धैर्य की आवश्यकता होती है। वास्तव में उत्साह समस्याओं से जूझने का हौसला देता है। यदि हम समस्याओं के आने पर टूट जाते हैं, तो हमें यह समझना चाहिए कि समस्याओं के अनुपात में हमारा उत्साह कम था। अन्यथा वास्तविक उत्साह समस्याओं के आने पर बढ़ते रहना चाहिए। जीवन में उतार-चढ़ाव तो आते ही रहते हैं और संघर्ष के बिना जीवन नहीं होता। परन्तु जिस प्रकार अग्नि जंगल को जला देती है, वैसे ही उत्साह आनेवाली समस्याओं को जला देता है और आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त करता है।

लापरवाही – लापरवाही और उत्साह में आकाश-पाताल का अन्तर है। एक लापरवाह व्यक्ति कभी भी उत्साही नहीं हो सकता। यदि हम अपने अन्दर उत्साह जगाना चाहें, तो अपने छोटे-बड़े कार्य सजगतापूर्वक करने चाहिए। इसी सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द जी अपने एक पत्र में लिखते हैं, ''एक पुरानी कहानी सुनो। एक निकम्मे भीखमंगे ने सड़क पर चलते-चलते एक वृद्ध को अपने मकान के द्वार पर बैठा देखकर रुककर उससे पूछा, 'अमुक ग्राम कितनी दूर है?' बुड्ढा चुप रहा। भीखमंगे ने कई बार प्रश्न किया, परन्तु उत्तर न मिला। अन्त में जब वह उकताकर वापस जाने लगा, तब बुड्ढे ने खड़े होकर कहा, 'वह ग्राम यहाँ से एक मील है।' भिखमंगा कहने लगा, 'जब मैंने तुमसे पहली बार पूछा था, तब तुमने क्यों नहीं बताया?' बुड्ढे ने उत्तर दिया, 'क्योंकि पहले तुमने जाने के लिए लापरवाही दिखाई थी और दुविधा में मालूम होते थे, परन्तु अब तुम उत्साहपूर्वक आगे बढ़ रहे हो, इसलिए अब तुम उत्तर पाने के अधिकारी हो गए हो।''[३]

स्वास्थ्य – स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन निवास करता है। परंतु शरीर अस्वस्थ हो जाए तो शारीरिक व मानसिक क्षमताएँ कम हो जाती हैं, और कभी-कभी हमें दूसरों पर भी निर्भर रहना पड़ता है। ऐसी स्थिति में मन में उत्साह की लहरें नहीं दौड़ सकतीं। अत: हमें चाहिए कि हम अपने स्वास्थ्य के प्रति सजग हों जिससे कम से कम हमारे स्वास्थ्य के कारण हमारा उत्साह कम ना हो।

सकारात्मकता – उत्साह स्वयं में एक सकारात्मक भाव है। परंतु उत्साह को बढ़ाने में सकारात्मक विचार सहायक होते हैं। एक व्यक्ति संकट में पड़कर हतोत्साहित हो जाता है और कार्य न कर पाने के कारण असफल हो जाता है। वहीं दूसरा व्यक्ति संकट में सकारात्मक विचार करने लगता है और संकट से निकलने का उपाय खोजने लगता है। इस प्रकार वह उत्साही होकर कार्य में लग जाता है और सफल भी होता है। एक विद्यार्थी परीक्षा में प्रश्न-पत्र देखकर निराश हो जाता है कि उसे अधिकांश प्रश्नों के उत्तर नहीं आते और निराशा से भरकर वह अपने भाग्य को कोसने लगता है और कुछ लिख नहीं पाता। वहीं एक दूसरा विद्यार्थी भी उसी स्थिति में होता है, पर वह सोचता है कि उसे जिन प्रश्नों के थोड़े-बहुत उत्तर ज्ञात हैं, उसे वह अच्छी तरह से लिखेगा, जिससे वह कम-से-कम उत्तीर्ण तो हो ही जाएगा और ऐसा करते हुए वह सफल भी होता है।

काम को अपना समझें – कर्तव्य-बोध ही उत्साह का जनक है। जब हम किसी कार्य को अपना समझ लेते हैं, तो उस कार्य के प्रति हमारा उत्साह स्वाभाविक हो जाता है। जिस प्रकार माँ अपने परिवार को अपना समझती है,

इसलिए कष्ट सहकर भी वह सबकी सुविधाओं का प्रबन्ध करते रहती है। चूँकि इस कार्य में अपनापन है, इसलिए सुख-दुख सभी स्थिति में अपने परिवार के लिए कार्य करने का उत्साह कम नहीं होता। एक सैनिक राष्ट्र को अपना राष्ट्र समझता है, इसलिए उसकी सुरक्षा के लिए हँसते-हँसते अपने प्राण निछावर कर देता है। यदि हम भी अपने परिवार, समाज व राष्ट्र के कर्तव्य तथा अपने प्रत्येक कार्यों को अपना समझ कर करें, तो हममें भी उत्साह दौड़ने लगेगा।

सत्संगति – रवि अपने महाविद्यालीन मित्रों के समक्ष बाढ़-राहत करने का प्रस्ताव रखता है, पर उसके मित्र उसका मजाक उड़ाने लगते हैं। वे उससे कहते हैं कि पढ़ाई-लिखाई में मन दे और थोड़ा समय मिल जाए, तो सिनेमा देखकर मनोरंजन कर लिया कर, इन सब फालतू कामों में समय नष्ट मत कर। रवि हतोत्साहित ही हो चुका था कि उसके कुछ पड़ोसी मित्रों से इस सन्दर्भ में बात हुई और वे इसके लिए सहमत हो गए। पड़ोसियों की सहायता से राहत कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। इस प्रकार हम जो भी कार्य करते हैं, यदि हमारे सहकर्मी, सहपाठी, मित्र या शुभचिंतकों का सकारात्मक साथ रहे, तो हमें भी कार्य का उत्साह बना रहता है। पर यदि हम कुछ करना चाहें और हमारे मित्र उसकी निंदा या प्रतिरोध करने लगें, तो हम भी उस कार्य के प्रति हतोत्साहित हो सकते हैं।

प्रेरणा – कभी-कभी कुछ प्रेरणाएँ हमें अपने लक्ष्य को पाने के लिए उत्साहित करती हैं। यह प्रेरणा विभिन्न लोगों के जीवन में विभिन्न प्रकार से आ सकती है, जैसे किसी महापुरुष, गुरु, किसी घटना अथवा किसी प्रेरणादायक पुस्तक के द्वारा। कुछ ऐसी ही प्रेरणा जमशेदजी टाटा को स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा प्राप्त हुई थी। जमशेदजी टाटा स्वामी विवेकानन्द जी को एक पत्र में लिखते हैं, 'मुझे विश्वास है कि जापान से शिकागो की यात्रा के दौरान आप अपने सहयात्री को नहीं भूले होंगे। मुझे आज भी भारत की तपोभूमि पर विकास और इस भावना को नष्ट न कर उचित दिशा देने वाले आपके विचार स्मरण हैं। मैंने इसी विचारधारा का समावेश 'भारतीय विज्ञान शोध संस्थान' में किया है, जिसके विषय में आपने अवश्य पढ़ा या सुना होगा।'[४]

प्रोत्साहन – यदि किसी को प्रोत्साहित किया जाए, तो उसे उस कार्य में उत्साह आ जाता है। इसीलिए आर्यों की युद्ध प्रणाली में सेनापति सबसे आगे होते थे, जिससे पूरी सेना को सेनापति का प्रोत्साहन मिलता रहे। विद्यार्थियों की विशेष प्रतिभाओं, जैसे चित्रकला, खेल या भाषण आदि के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया जाता है, तो वे उस कार्य में और भी उत्साहित हो जाते हैं। इस प्रकार वे उस कार्य में दक्षता भी प्राप्त करते हैं। पुरस्कृत करने का उद्देश्य भी प्रोत्साहित करना होता है।

दिव्यत्व का स्मरण – हम सबसे कमजोर तब होते हैं, जब हम स्वयं को कमजोर मान लेते हैं। हम सब से असहाय तब होते हैं, जब हम स्वयं को असहाय मान लेते हैं। एक सामान्य व्यक्ति की दौड़ मात्र सुखप्राप्ति के लिए होती है, पर दिव्यत्व का चिन्तन करनेवालों की

महानता तक होती है। एक सामान्य व्यक्ति बाधाओं से टूट जाता है, जबकि दिव्यत्व का स्मरण करनेवालों को बाधाएँ बाँध नहीं सकतीं। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, 'वेदान्त कहता है कि केवल यही स्तवन हमारी प्रार्थना हो सकता है। अन्तिम लक्ष्य पर पहुँचने का यही एकमात्र उपाय है। अपने से और सबसे यही कहना कि हम ब्रह्मस्वरूप हैं। हम ज्यों-ज्यों इसकी आवृत्ति करते हैं, त्यों-त्यों हममें बल आता जाता है। 'शिवोऽहं' रूपी यह अभय वाणी क्रमश: अधिकाधिक गम्भीर हो हमारे हृदय में, हमारे सभी भावों में भी भिदती जाती है और अन्त में हमारी नस-नस में, हमारे शरीर के प्रत्येक भाग में समा जाती है। ज्ञान-सूर्य की किरण जितनी उज्ज्वल होने लगती हैं, मोह उतना ही दूर भागता जाता है, अज्ञानराशि ध्वंस होती जाती है, और अन्त में एक समय आता है, जब सारा अज्ञान बिल्कुल लुप्त हो जाता है और केवल ज्ञान-सूर्य ही अवशिष्ट रह जाता है।'[५] 'क्या तुम्हें विश्वास है कि वही अनन्त मंगलमय विधाता तुम्हारे भीतर से काम कर रहा है? यदि तुम ऐसा विश्वास करो कि वही सर्वव्यापी अन्तर्यामी प्रत्येक अणु-परमाणु में, तुम्हारे शरीर, मन और आत्मा में ओत-प्रोत है, तो फिर क्या तुम कभी उत्साह से वंचित रह सकते हो?[६]

उपसंहार – आज जगत चिंताग्रस्त है और हमें उससे मुक्त होने के लिए उत्साह की आवश्यकता है। अच्छी संगति, प्रोत्साहन तथा सकारात्मक विचार उत्साह दिलाने में सहायक होते हैं, परन्तु कर्म-बोध और ज्ञान-बोध द्वारा उत्साह प्रत्येक सीमाएँ लांघ जाता है। तब उसे सुख-दुख, जन्म-मृत्यु, मान-अपमान, सुविधा-असुविधा इत्यादि की परवाह नहीं रहती। कर्म-बोध व्यक्ति को स्वयं के कर्तव्य का निर्वाह करने के लिए उत्साहित कर देता है। वहीं ज्ञान-बोध से व्यक्ति अपने दिव्यत्व अर्थात् अपने भीतर छिपी असीम शक्ति को जानकर सब कुछ कर सकने का उत्साह पा जाता है।

स्वामीजी आह्वान करते हुए कहते हैं,'उठो ...जागो, संसार तुम्हें पुकार रहा है। भारत के अन्य भागों में बुद्धि है, धन भी है, परन्तु उत्साह की आग केवल हमारी ही जन्मभूमि में है। उसे बाहर आना ही होगा, इसलिए ... युवकों, अपने रक्त में उत्साह भर कर जागो। मत सोचो कि तुम गरीब हो, मत सोचो कि तुम्हारे मित्र नहीं हैं। अरे, क्या कभी तुमने देखा है कि रुपया मनुष्य का निर्माण करता है? नहीं, मनुष्य ही सदा रुपए का निर्माण करता है। यह सम्पूर्ण संसार मनुष्य की शक्ति से, उत्साह की शक्ति से, विश्वास की शक्ति से निर्मित हुआ है।'[७] 'महान तेज, महान बल तथा महान उत्साह की आवश्यकता है।'[८] 'तुमसे जितना हो सके आन्दोलन शुरू कर दो। केवल झूठ से बचो। काम में लग जाओ, मेरे बच्चो, उत्साहाग्नि तुममें स्वयं प्रज्वलित हो उठेगी।'[९] ○○○

सन्दर्भ सूची : **१.** अथर्ववेद ४/३२/५, **२.** विवेकानन्द साहित्य ६/९६, **३.** वि.सा. ३/३४७, **४.** life of swami vivekananda by his Eastern and western disciples vol २/३९७, **५.** वि. सा. २/१९०, **६.** वि. सा. ५/२६७, **७.** वि. सा. ५/२१२, **८.** वि. सा. ४/४०९, **९.** वि. सा. २/३८१

प्रेरक लघुकथा

ज्ञान की जननी : जिज्ञासा

शरत चन्द्र पेंढारकर

एक बार प्लेटो ने यह घोषणा की कि यूनान में यदि कोई विद्वान और ज्ञानी है, तो वह सुकरात हैं। तब लोग बधाई देने के लिए सुकरात के पास जा पहुँचे। बधाई का कारण पूछने पर उन्होंने प्लेटो की घोषणा का उल्लेख किया। इस पर सुकरात ने कहा, ''मैं तो कुछ नहीं जानता, अज्ञानी हूँ। हाँ, जानने की अवश्य कोशिश करता रहता हूँ। इसलिए मुझे ज्ञानी कहना ठीक नहीं।'' लोगों ने जब प्लेटो को बताया कि ''सुकरात कहता है कि वह कुछ नहीं जानता, तब आप उसे ज्ञानी कैसे बताते हैं?'' प्लेटो ने कहा, ''जो यह जानता है कि वह कुछ नहीं जानता, वास्तव में वही जानता है। ज्ञानी लोग जानकर भी 'कुछ नहीं जानता' कहकर अपने को अज्ञानी बताते हैं।''
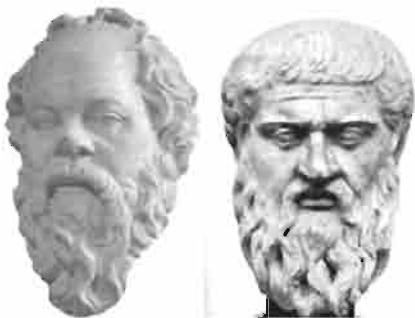
सुकरात ४७०-३९९ बी.सी. प्लेटो ४२८-३४८ बी.सी.

किसी भी बात को जानने की उत्सुकता 'जिज्ञासा' कहलाती है। जिज्ञासा ज्ञान की जननी होती है। हमारी रुचि दूसरों को जानने और अपनी जान-पहचान बढ़ाने की ओर रहती है। हम स्वयं अपने को जानने की कोशिश नहीं करते। हमारा प्रयत्न यही रहता है कि लोग हमारी ओर आकृष्ट हों। हम अपने बारे में यही जानते हैं कि मेरा कहलाने लायक क्या-क्या है। शरीर, परिवार, धन-सम्पत्ति आदि जो नश्वर है, को हम मेरा बताते हैं। निधन होने के बाद हम जिसे मेरा बताते हैं, वह हमारे साथ नहीं जाता। ईश्वर के बारे में भी हमारी धारणा गलत रहती है। ईश्वर सर्वज्ञ है, किन्तु उसके बारे में 'हम उसे जानते है' यह कहना नितान्त मूढ़ता होगी। हम जब आकाश को देखते हैं, तो हम यह नहीं कह सकते कि हमने आकाश को देख लिया है। आकाश अनन्त है, उसे पूरा नहीं देखा जा सकता। इसी प्रकार ईश्वर पूर्ण ब्रह्म हैं, इसलिए उसे पूर्ण रूप से जान पाना सम्भव नहीं। ○○○

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (२३)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

वैदिक विद्यालय

बहुत-से लोग जानते हैं कि खेतड़ी के राजा स्वामीजी के शिष्य थे । मेरे काफी प्रयासों के फलस्वरूप उनकी राजधानी में एक वैदिक विद्यालय स्थापित हुआ था। मेरी काफी काल से प्रबल इच्छा थी कि वेदविहीन बंगाल में वैदिक शिक्षा आरम्भ किया जाय। स्वामी रामकृष्णानन्द ने मुझे उत्साहित किया कि मैं काशी आदि स्थानों से वेदज्ञ विद्वानों को लाकर इस योजना को कार्य रूप में परिणत करूँ। उन दिनों मेरे मन में ऐसी धारणा थी कि काशीधाम में वैसे विद्वानों का अभाव नहीं है। परन्तु दुख की बात यह है कि काशी के चौखम्बा के रईस सुधी बाबू प्रमदादास मित्र को उसी प्रकार के एक वेदज्ञ विद्वान भेजने की बात लिखने पर उन्होंने उत्तर दिया कि वैसे विद्वान् काशी में नहीं हैं। जो हैं, वे भी केवल स्वरपाठ तथा हस्तपाठ ही कर सकते हैं। तो भी उन्होंने सूचित किया कि वे उस प्रकार के एक विद्वान् की खोज करते रहेंगे। काशी जैसे स्थान में भी वास्तविक वेदज्ञ ब्राह्मण आसानी से नहीं मिलते, यह सुनकर मैं दुखी तथा मर्माहत हुआ था।

बैरकपुर की ओर

उसी समय मैंने समाचार-पत्र में देखा कि भूदेव बाबू अपनी मृत्यु के समय वैदिक शिक्षा के लिये एक लाख से भी अधिक रुपये दान कर गये हैं और वह कार्य थोड़ा-बहुत आरम्भ भी हुआ है। मेरे मन में यह देखने की इच्छा हुई कि वैदिक शिक्षा का कार्य किस प्रकार अग्रसर हो रहा है।

सर्वप्रथम 'बेंगाली' अखबार के माध्यम से वैदिक शिक्षा के अनुकूल एक आन्दोलन शुरू करने के निमित्त मैं मनिरामपुर में बाबू सुरेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय के घर गया। सुरेन बाबू उस समय अपने घर के सामने ही गंगा के तटबन्ध पर टहल रहे थे। मुख्य द्वार पर रखे एक बेंच पर बैठकर मुझे थोड़ी देर प्रतीक्षा करनी पड़ी। टहलना हो जाने के बाद सुरेन बाबू आकर मुझसे बोले, ''मुझे तो साँस लेने तक की

फुरसत नहीं है। आप बैठिये, मैं अभी आता हूँ।'' थोड़ी देर बाद ही वे चोंगा-चपकन पहने बाहर आये। उन्होंने मुझसे पूछा, ''क्या आप स्वामी विवेकानन्द के मठ से आये हैं?''

मैं बोला, ''जी हाँ। आप सुविख्यात देशप्रेमी हैं, इसीलिये आपसे मिलने आया हूँ।'' सुरेन बाबू बोले, ''हाँ, थोड़ा-थोड़ा प्रयास करता हूँ।'' मैं बोला, ''आलमबाजार मठ में हम लोग एक वैदिक विद्यालय स्थापित करना चाहते हैं। अपने 'बेंगाली' अखबार में इस विषय पर यदि आप एक आन्दोलन आरम्भ करें, तो बड़ा अच्छा होगा, यही अनुरोध लेकर मैं आपके पास आया हूँ।'' सुरेन बाबू ने पूछा, ''अब आपको कहाँ जाना है?'' मैं बोला, ''भाटपाड़ा; वहाँ जाकर मुझे पण्डित महाशयों के साथ इस विषय पर चर्चा करनी है।'' वे बोले, ''यह तो बड़ी उत्तम बात है। मैं अवश्य ही इसके पक्ष में आन्दोलन करूँगा।''

हमारी बातें पूरी होते ही एक घोड़ागाड़ी आकर उस घर के सामने खड़ी हो गयी। गाड़ी देखकर सुरेन बाबू ने मेरी ओर उन्मुख होकर कहा, ''मैं बैरकपुर स्टेशन जा रहा हूँ, आप मेरे साथ चलिये। भाटपाड़ा के मार्ग में आपको उतारते हुए चला जाऊँगा।'' गाड़ी में चढ़ते ही उन्होंने मुझे अपने समीप बैठा लिया। उनका सहकारी हम लोगों के सामने बैठा। रास्ते में बहुत-सी बातें हुईं। वे बोले, ''आप लोग भी काँग्रेस के प्रचार-कार्य में योगदान कीजिये।'' उनकी इस बात के उत्तर

में मैंने कहा, "आप लोगों का काँग्रेस मुझे तो एक विराट् तमाशा ही प्रतीत होता है। साल में केवल तीन दिन खूब शोरगुल, भव्य समारोह और उसके बाद सब ठण्डा। देश में सर्वत्र कितने ही भूखे, निर्धन तथा असहाय लोग पड़े हुए हैं; परन्तु आप लोग तो उनकी कोई खोज-खबर ही नहीं लेते! मुझे तो आपका कोई भी प्रचारक किसी किसान की झोपड़ी में देखने को नहीं मिलता।"

वे मेरी बातों पर नाराज होकर बोल उठे, "आप क्या भगवान के जैसे अकेले ही सर्वदा सर्वत्र रह सकते हैं? उस प्रकार के प्रचारक तथा सेवक हमारे पास पर्याप्त हैं।" मैंने कहा, "मेरा दुर्भाग्य है कि उन सब प्रचारकों में से ढूँढ़ने पर मुझे एक भी नहीं मिल सका।" वे चुप रहे। थोड़ी देर ठहरकर मैं फिर बोला, "अच्छा महाशय, पी एण्ड ओ, फिन्ले मुइर, मैकिनन मैकेंजी आदि कम्पनियों की तरह क्या आप लोग भी कोई देशी कम्पनी बनाकर आयात-निर्यात की व्यवस्था नहीं कर सकते?"

सुरेन्द्र बाबू ने कहा, "हाँ, हम लोग उसके लिये भी प्रयास कर रहे हैं।" ये बातें कहते-कहते वे मुझे भाटपाड़ा के मार्ग में उतारकर आगे चले गये।

भाटपाड़ा

उन दिनों भाटपाड़ा में मेरा कोई भी परिचित नहीं था। मैं पण्डित यज्ञपति विद्यारत्न के मकान में ठहरा। उन्होंने बड़े स्नेहपूर्वक मुझे अपने घर में स्थान दिया। इसके बाद क्रमश: पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषण के बड़े भाई काशीनरेश के सभा-पण्डित श्रीयुत प्रियनाथ तत्त्वरत्न, पण्डित पंचानन तर्करत्न और उत्तरपाड़ा हाईस्कूल के प्रधान संस्कृत-शिक्षक पण्डित कृष्णपद न्यायरत्न आदि विद्वानों के साथ मेरा परिचय तथा बातें हुईं। उन लोगों ने मेरे वैदिक शिक्षा आरम्भ करने के प्रस्ताव का पूरे हृदय से अनुमोदन किया और हम लोगों को ही उसका पथप्रदर्शक बनने का अनुरोध किया। उन लोगों ने यह वचन भी दिया कि वे अपनी सन्तानों को वैदिक शिक्षा प्रदान करेंगे। उन लोगों का मत था कि वैदिक शिक्षा को मूल आधार बनाये बिना वास्तविक शिक्षा नहीं हो सकती और वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के द्वारा देश, जाति तथा समाज की उन्नति भी नहीं हो सकती। पण्डितों का स्नेह तथा विद्वज्जनोचित व्यवहार देखकर मैं मुग्ध हो गया। पहले तो मेरे मन में आशंका हुई थी कि न जाने ठाकुर के विषय में इन लोगों की क्या धारणा होगी, स्वामीजी को ये लोग किस दृष्टि से देखते होंगे और मेरे साथ भी ये लोग न जाने कैसा आचरण करेंगे! परन्तु देखा – ठाकुर का नाम लेते ही उन लोगों ने उन्हें 'पतित-पावन' नाम देते हुए उनके निमित्त प्रणाम किया। स्वामीजी के विषय में वे बोले, "वे प्रतिभा की प्रतिमूर्ति हैं, वे स्वदेश का गौरव बढ़ानेवाले महापुरुष हैं, तथापि उनके विदेश-गमन तथा यथेच्छा आहार के कारण हम लोग उन्हें थोड़ा दूर रखना चाहते हैं।"

पण्डित महाशयों में से कइयों ने मुझे निमंत्रण देकर बड़े यत्नपूर्वक खिलाया था। मुझे भलीभाँति याद है कि श्रीयुत पंचानन तर्करत्न महाशय के घर में आहार के पूर्व मंत्रपाठ के साथ मेरे हाथ में तुलसी-गंगाजल देकर महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों के समान मेरा संस्कार किया गया था। इलाहाबाद के म्यूर कालेज में संस्कृत के प्राध्यापक पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य के घर में उनके सगे-सम्बन्धियों ने मेरा खूब सत्कार किया था। पण्डित आदित्यराम के साथ मेरा उत्तराखण्ड में पहले ही परिचय हो चुका था। बाद में इलाहाबाद में मैंने एक रात उनके घर में निवास किया था। संध्या के समय पण्डित शिवचन्द्र सार्वभौम, श्रीयुत प्रियनाथ तर्करत्न तथा श्रीयुत पंचानन तर्करत्न आदि स्वनामधन्य विद्वानों के बीच काव्य, साहित्य तथा अलंकार आदि शास्त्रों पर होनेवाली गहन चर्चा को मैं मंत्रमुग्ध होकर सुना करता था। भाटपाड़ा के पण्डित महाशयों के शुभ सान्निध्य में मैंने कुछ दिन परम आनन्दपूर्वक बिताये थे। अब भी उनकी याद आने से बड़ा आनन्द होता है।

भाटपाड़ा के पण्डित मधुसूदन स्मृतिरत्न को मैं बचपन से ही पहचानता था। भाटपाड़ा में आकर सुना कि वे स्वर्गवासी हो चुके हैं। उनके बड़े पुत्र संस्कृत कॉलेज के प्राध्यापक पण्डित ऋषीकेश शास्त्री के साथ मैंने बातचीत की। वे 'विद्योदय' नामक संस्कृत पत्रिका के सम्पादक थे। उन दिनों बंगाल में 'विद्योदय' के अतिरिक्त संस्कृत की अन्य कोई मासिक पत्रिका नहीं निकलती थी। बातचीत के दौरान उन्होंने वराहनगर की एक पुरानी बात सुनकर बड़ा सन्तोष व्यक्त किया। वराहनगर मठ में रहते समय मैंने रामकृष्णानन्द से सुना था कि वराहनगर के कैलास ठाकुरदा सरकारी नौकरी से सेवानिवृत्ति तथा पेंशन लेकर काशी में रहने लगे थे। बीच-बीच में वहाँ से लौटने पर वे नियमित रूप से हमारे वराहनगर मठ में आया करते थे। वे बड़े ही विनोदप्रिय थे और मठ के सभी लोगों के प्रति विशेष श्रद्धा रखते थे। एक

दिन उन्होंने मठ में आकर रामकृष्णानन्द को कहा था, "अरे भाई, तुम लोग तो मनुष्य से देवता हो गये हो; और मैं मनुष्य से गोजर हो गया हूँ।"

रामकृष्णानन्द बोले, "वह कैसे ठाकुरदा, आप तो भाग्यवान हैं। धन, पुत्र तथा ऐश्वर्य लाभ करके आप ऐसी बात क्यों कह रहे हैं?"

ठाकुरदा बोले, "तो भाई सुन लो कि कैसे मैं गोजर हुआ। जब अकेले था, तो मेरे केवल दो पाँव थे। विवाह के बाद मैं चौपाया हो गया। जब नातियों-नतिनियों से घर भर गया, तो गोजर के समान मेरे इतने पाँव हो गये कि अब उन्हें गिना भी नहीं जा सकता। इसके बाद सारे दिन कचहरी में काम करने के बाद, कपड़े आदि बदलकर, जनेऊ को अंगुली में लपेटकर, कोषा-कोषी लेकर इष्टदेव का स्मरण करने बैठते ही जब मेरा दुलारा पौत्र आकर 'दादा' कहते हुए मेरे गले को पकड़कर लटक जाता है, तब मेरा मन भीतर से गोजर के समान ही संकुचित हो जाता है।"

स्वामी रामकृष्णानन्द

उनकी यह बात सुनकर सबकी उनके प्रति श्रद्धा बढ़ गयी। शास्त्री महाशय यह सुनकर बोले, "यह तो बड़ी अद्भुत बात है! मैं इसका अनुवाद करके अपनी 'विद्योदय' पत्रिका में प्रकाशित करूँगा।"

तभी से लेकर काफी काल तक हमारे आलमबाजार मठ में 'विद्योदय' पत्रिका आती रही। रामकृष्णानन्द उस पत्रिका को पढ़कर बड़ा आनन्द पाते थे।

बाबू सुरेशचन्द्र दत्त द्वारा संकलित 'Saying of Paramahansa Ramakrishna Dev' ग्रन्थ में ठाकुर के ५९५ उपदेश थे। इसके पहले ठाकुर के उपदेशों के संकलन के रूप में अन्य कोई ग्रन्थ नहीं निकला था। प्रतिदिन दोपहर में भोजन आदि हो जाने के बाद समय मिलने पर स्वामी रामकृष्णानन्द उस पुस्तक से ठाकुर के उपदेशों का (संस्कृत के) अनुष्टुप छन्द में अनुवाद करके 'विद्योदय' पत्रिका में छपने के लिये भेज देते। 'विद्योदय' के अनेक अंकों में ठाकुर के उपदेश प्रकाशित हुए थे।[१]

भाटपाड़ा में वैदिक पाठशाला स्थापित करने का प्रस्ताव रखने पर वहाँ के पण्डित लोग बोले, "हमारे शिष्य सोमबाबू ने ऐसे ही एक विद्यालय की स्थापना के लिये ५००० रुपये देने का वचन दिया है।" उन लोगों ने मुझे बताया कि यदि हम उस वैदिक विद्यालय की स्थापना में लग जाएँ, तो वे लोग वह धनराशि हमें सौंप देंगे। परन्तु खेद की बात यह है कि 'न नौ मन तेल हुआ और न राधा नाची।' बाद में सुनने में आया कि उन्हीं रुपयों के द्वारा भाटपाड़ा का वर्तमान हाईस्कूल निर्मित हुआ।

ठाकुर के एक प्रमुख भक्त ईशान बाबू ने गंगातट पर एक कुटिया बनवाकर उनमें कुछ दिन निवास करके गायत्री-पुरश्चरण किया था। पण्डित लोगों ने मुझे वह कुटिया दिखाई। पण्डित शिवचन्द्र सार्वभौम महाशय उन दिनों महाराजा यतीन्द्र मोहन ठाकुर के मूलाजोड़ संस्कृत पाठशाला के प्रधानाचार्य थे। मैं उस पाठशाला को देखने गया और एक रात वहीं ठहर गया। संध्या हो जाने के बाद मैं महाराजा द्वारा स्थापित माँ-ब्रह्ममयी का दर्शन करने गया था। मन्दिर में माँ को प्रणाम करने के बाद थोड़ी देर माँ के समक्ष बैठते ही माँ-ब्रह्ममयी के पुजारी तथा सेवाइत लोग आकर मेरे चारों ओर बैठ गये। मुझे ठाकुर का शिष्य जानकर वे लोग बड़ी श्रद्धा के साथ मेरे साथ वार्तालाप करने लगे। वे सभी श्रीपुर-कामारपुकुर के निवासी ब्राह्मण थे। उनके मुख से ठाकुर के बाल्य-जीवन की बहुत-सी अज्ञात घटनाएँ सुनकर मैं अवाक् रह गया। वे सभी एक साथ क्षोभ तथा विस्मय प्रकट करते हुए कहने लगे, "महाराज, हम लोग सचमुच ही अभागे हैं; एक ही गाँव में रहते हुए भी, उनके बचपन का खेलकूद देखकर भी हम लोग उनकी ईश्वरी शक्ति को समझ नहीं सके, उन्हें पहचान नहीं सके। अब सोचते हैं कि क्या वे देवता थे, या किन्नर थे, या फिर साक्षात् परमेश्वर ही थे! हाय, अब हम लोग घोर पश्चात्ताप की ज्वाला में झुलस रहे हैं! महाराज, आप लोग धन्य हैं, धन्य हैं! उन्होंने आप लोगों को अपना दिव्य स्वरूप पहचनवा दिया है, यह क्या कम भाग्य की बात है।" **(क्रमशः)**

१. श्रीरामकृष्ण के उपदेशों के इस अनुवाद के लिये देखें – The Complete Works of Swami Ramakrishnananda, Vol. I, p.p. 105-122

दृग्-दृश्य-विवेकः (६)

(यह ४६ श्लोकों का 'दृग्-दृश्य-विवेक' नामक प्रकरण ग्रन्थ 'वाक्य-सुधा' नाम से भी परिचित है। इसमें मुख्यतः 'दृश्य' के रूप में जीव-जगत् की और 'द्रष्टा' के रूप में 'आत्मा' या 'ब्रह्म' पर; और साथ ही 'सविकल्प' तथा 'निर्विकल्प' समाधियों पर भी चर्चा की गयी है। ग्रन्थ छोटा, परन्तु तत्त्वबोध की दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। ज्ञातव्य है कि इसके १३वें से ३१वें श्लोकों के बीच के आनेवाले १६ श्लोक 'सरस्वती-रहस्य-उपनिषद्' में भी प्राप्त होते हैं। मूल संस्कृत से इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है – सं.।)

खवाय्वग्निजलोर्वीषु देवतिर्यङ्नरादिषु।
अभिन्नाः सच्चिदानन्दाः भिद्येते रूपनामनी ॥२१॥

अन्वयार्थ – **ख-वायु-अग्नि-जल-उर्वीषु** आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी में **देव-तिर्यङ्-नर-आदिषु** देवता, पशु तथा मनुष्य आदियों में **सच्चिदानन्दाः** सत् चित् आनन्द (ये तीन अंश) **अभिन्नाः** अभिन्न रूप से विद्यमान हैं, (जबकि) **रूप-नामनी** रूप तथा नाम (ये दो अंश) **भिद्येते** भिन्नता रखते हैं।

भावार्थ – आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी में; और देवता, पशु तथा मनुष्य आदियों में – सत् चित् आनन्द (ये तीन अंश) अभिन्न रूप से विद्यमान हैं, (जबकि) रूप तथा नाम (ये दो अंश) (सभी वस्तुओं तथा जीवों में) भिन्नता रखते हैं।

नाम-रूप की उपेक्षा

उपेक्ष्य नामरूपे द्वे सच्चिदानन्दतत्परः।
समाधिं सर्वदा कुर्याद्धृदये वाऽथवा बहिः ॥२२॥

अन्वयार्थ – **नामरूपे** नाम तथा रूप – (इन) **द्वे** दोनों की **उपेक्ष्य** उपेक्षा करके **सच्चिदानन्द-तत्परः** सत् चित् तथा आनन्द के परायण **(सन्)** होकर **हृदये वा** हृदय में **अथवा** अथवा **बहिः** बाहर – **सर्वदा** निरन्तर **समाधिं** एकाग्रता का **कुर्यात्** अभ्यास करो।

भावार्थ – नाम तथा रूप – (इन) दोनों की उपेक्षा करके, सत्-चित् तथा आनन्द के परायण होकर, हृदय में अथवा बाहर – निरन्तर एकाग्रता का अभ्यास करो।

एकाग्रता और समाधि

अगले ७ श्लोकों में दो प्रकार की एकाग्रता या समाधियों का विवरण दिया गया है। ३ श्लोकों में हृदय में की जाने वाली एकाग्रता का वर्णन है –

सविकल्पो निर्विकल्पः समाधिर्द्विविधो हृदि।
दृश्यशब्दानुवेधेन सविकल्पः पुनर्द्विधा ॥२३॥

अन्वयार्थ – **सविकल्पः** सविकल्प (सविचार) (तथा) **निर्विकल्पः** निर्विकल्प (निर्विचार) – इन **द्विविधः** दो प्रकार की **समाधिः** समाधियों (एकाग्रताओं) का **हृदि** हृदय में (अभ्यास करना चाहिये)। **पुनः** फिर, **सविकल्पः (समाधिः)** सविचार समाधि (भी) **दृश्य-शब्द-अनुवेधेन** दृश्य तथा शब्द (रूपी विषयों) के आश्रय-भेद के अनुसार **द्विधा** दो प्रकार की (होती है)।

भावार्थ – सविकल्प (सविचार) (तथा) निर्विकल्प (निर्विचार) – इन दो प्रकार की समाधियों (एकाग्रताओं) का हृदय में (अभ्यास करना चाहिये)। फिर, सविकल्प समाधि (भी) दृश्य तथा शब्द (रूपी विषयों) के आश्रय-भेद के अनुसार दो प्रकार की (होती है)।

दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि

अब उस सविकल्प समाधि का वर्णन किया जा रहा है, जिसमें 'एकाग्रता' किसी वस्तु पर आधारित है –

कामाद्याश्चित्तगा दृश्यास्तत्साक्षित्वेन चेतनम्।
ध्यायेद्दृश्यानुविद्धोऽयं समाधिः सविकल्पकः ॥२४॥

अन्वयार्थ – **चित्तगाः** चित्त में आनेवाली **कामाद्याः** कामनाएँ, (संकल्प) आदि वृत्तियाँ, **दृश्याः** दृश्य (कहलाती) हैं; **चेतनं** चेतन (आत्मा) का **तत्-साक्षित्वेन** उनके साक्षी के रूप में **ध्यायेत्** ध्यान करना चाहिये; **अयं** यह **दृश्यानुविद्धः** दृश्य से सम्बन्ध रखनेवाली **सविकल्पकः** सविकल्प (सविचार) **समाधिः** समाधि (कहलाती है)।

भावार्थ – चित्त में आनेवाली कामनाएँ, (संकल्प) आदि वृत्तियाँ, दृश्य (कहलाती) हैं; चेतन (आत्मा) का उनके साक्षी के रूप में ध्यान करना चाहिये; यह दृश्यानुविद्ध अर्थात् दृश्य से सम्बन्ध रखनेवाली सविकल्प (सविचार) समाधि कहलाती है।

स्वामी विवेकानन्द की शिकागो वक्तृता और भारतीय नवजागरण

अवधेश प्रधान

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

(गतांक से आगे)

स्टेट्समैन और इंग्लिश मैन का ईसाई पक्षपात जगजाहिर था। लेकिन इलाहाबाद के 'पायोनियर' ने ही मार्विन मेरी स्नेल का प्रशंसात्मक पत्र छापा था जिससे चारों ओर हलचल मच गई थी। सबसे महत्त्वपूर्ण हैं बम्बई से प्रकाशित 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के तीन सम्पादकीय जो क्रमश: ६ अगस्त, २३ अगस्त और ९ सितम्बर को छपे थे। इन संपादकीय लेखों में स्वामी विवेकानन्द की योग विषयक रचनाओं का ब्योरेवार विश्लेषण किया गया था और बीच-बीच में अत्यन्त श्रद्धा और सहानुभूतिपूर्वक उनकी उक्तियाँ भी उद्धृत की गई थीं। सम्पादकीय शृंखला के आरम्भ में ही विवेकानन्द की चिन्ताधारा को श्रीरामकृष्ण और ब्राह्म समाज से जोड़ते हुए लिखा था, ''जिसे सार्वभौमिक धर्म कहते हैं, उसकी नींव ऋषि श्रीरामकृष्ण देव ने ही डाली थी और ब्राह्म धर्म में उसका विकास जिन्होंने किया, वे हैं केशवचन्द्र सेन। केशवचन्द्र ने इस विषय में प्रथम अन्तर्दृष्टि ऋषि रामकृष्ण से ही प्राप्त की थी। स्वामी विवेकानन्द ब्राह्म नेता केशवचन्द्र की ही तरह ऋषि रामकृष्ण के शिष्य हैं।'' स्वामी विवेकानन्द के ''सार्वभौमिक धर्म के आदर्श'' विषयक रचनात्मक विचारों को रेखांकित करते हुए लिखा था, ''उन्होंने कहा है, हो सके तो सहायता करो, किन्तु ध्वंस मत करो। तुम मनुष्य को आध्यात्मिक बना सकते हो, इस प्रकार की धारणा बिल्कुल छोड़ दो। यह असम्भव है।.... धर्म के क्षेत्र में तुम्हारी अपनी आत्मा को छोड़कर और कोई शिक्षक नहीं है।'' सम्पादकीयों का अन्त इस वाक्य से हुआ था, ''हम कह सकते हैं, यह अत्यन्त महान् शिक्षा है।'' (वही पृ० १४९)

ईसाई पक्षपात के लिए विख्यात ऐंग्लो इंडियन पत्र 'बोम्बे गजट' ने स्वामीजी के राजयोग की समीक्षा की। उसमें 'टाइम्स ऑफ इंडिया' जैसी सहानुभूति और प्रशंसा तो नहीं है, लेकिन निन्दा बिलकुल नहीं है। ५ सितम्बर, १८९६ के अंक में 'राजयोग' की वह प्रसिद्ध वाणी उद्धृत है जिसका आरंभ इस वाक्य से होता है - Each soul is potentially divine. (प्रत्येक जीव अव्यक्त ब्रह्म है)। ऐंग्लो-इंडियन पत्रों में प्रकाशित स्वामीजी के योग सम्बन्धी विचारों की चर्चा से क्षुब्ध किसी एन.वाई.के. नामक पत्र लेखक का एक पत्र 'बोम्बे गजट' (३० सितम्बर, १८९६) में छपा जिसमें क्षोभपूर्वक कहा गया था कि यदि ईसाई अखबार ही हिन्दू योग शास्त्र को लेकर इतना उत्साह दिखलाएंगे तो फिर भारत में ईसाई धर्म का भविष्य कहाँ होगा? लेकिन मद्रास मेल ने राजयोग और भक्तियोग पर दो लेख लिखे। १० अगस्त, १८९५ को प्रकाशित लेख में राजयोग की प्रशंसात्मक समीक्षा करते हुए लिखा था, ''विवेकानन्द के व्याख्यानों और लेखों में उनका उदार मनोभाव स्पष्ट है। दूसरे धर्म-सम्प्रदायों के दोषों और त्रुटियों को उन्होंने अपना मूलधन नहीं बनाया। उन्होंने केवल अपने धर्म की गुण-गरिमा का प्रतिपादन किया। १८ नवम्बर, १८९६ के सम्पादकीय लेख में भक्ति योग की समीक्षा करते हुए स्वामीजी के दृष्टिकोण की प्रशंसा इन शब्दों में की गई, ''ये जिस प्रकार हिन्दू धर्म की प्रशंसा करते हैं उसी प्रकार छद्म-शिक्षकों के बारे में कठोरतापूर्वक सतर्क करने में भी तनिक नहीं हिचकते।'' स्वामीजी के बारे में 'मद्रास मेल', शुरू में सतर्क था, फिर धीरे-धीरे स्वामीजी के प्रति उसमें सहानुभूति और प्रशंसा का भाव बढ़ता गया जो १८९७ में स्वामीजी के मद्रास पहुँचने पर पराकाष्ठा पर पहुँच गया। २५ दिसम्बर, १८९५ के 'हिन्दुइज्म इन दि वेस्ट' शीर्षक सम्पादकीय में लिखा, ''यदि इंग्लैण्ड और अमेरिका भारत को बहुत कुछ सिखा सकते हैं तो दूसरी ओर भारत के पास भी उन्हें सिखाने को बहुत कुछ है।'' विवेकानन्द की पश्चिम यात्रा की सराहना करते हुए लिखा, ''प्राच्य और पाश्चात्य के इस संयोग से पारस्परिक जिज्ञासा और श्रद्धा में वृद्धि होगी।' मद्रास मेल ने स्वामी विवेकानन्द

के आन्दोलन के मुखपत्र -'ब्रह्मवादिन' और 'प्रबुद्ध भारत' का खुलकर स्वागत किया था।

मद्रास टाइम्स ने मद्रास मेल की सतर्कता और हिचकिचाहट के विपरीत स्वामी विवेकानन्द के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा प्रकट की। शंकरी प्रसाद बसु ने जोर देकर लिखा है, ''समूचे भारत के प्राय: सभी मुख्य समाचार पत्रों को देखने के बाद हमें स्वीकार करना होगा कि इंडियन मिरर और हिन्दू को छोड़कर स्वामीजी के जीवन-काल में उनके बारे में इतने उत्कृष्ट सम्पादकीय कोई और पत्रिका नहीं लिख पाई।'' (वही, पृ० १५२) ९ नवम्बर, १८९४ के मद्रास टाइम्स ने स्वामीजी की सुप्रसिद्ध रचना 'मद्रास अभिनन्दन का उत्तर' की अभूतपूर्व शक्ति और सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए सम्पादकीय लिखा था। स्वामीजी के मुखपत्र प्रबुद्ध भारत और ब्रह्मवादिन की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। ५ नवम्बर, १८९६ को एक लम्बे सम्पादकीय में स्वामीजी के 'भक्तियोग' की प्रशंसा करते हुए लिखा, यह नई दुनिया में हिन्दू धर्म के सन्देश-वाहक विवेकानन्द की आश्चर्यजनक रचना है जो विचार और शैली में अद्‌भुत रूप से क्रिश्चियन है। वे एक ''पूरी तरह नया हिन्दू धर्म'' लाए हैं, ''जिसकी शैली उन्होंने अवश्य ही लम्बे समय तक पश्चिम प्रवास के फलस्वरूप प्राप्त की है।'' उनकी रचना प्राय: गोस्पेल के सदृश प्रतीत होती है।..... स्वामीजी के प्रचार की भाषा और शैली देखकर लगता है मानो न्यू इंग्लैण्ड के निवासियों के बीच पिलग्रिम फादर प्रचार कर रहे हैं। यदि अनेक अमेरिकियों ने उन्हें गुरु के रूप में स्वीकार किया है, तो इसमें आश्चर्य करने का कोई कारण नहीं है। इसमें स्वामीजी के प्रति प्रशंसा के भाव के साथ-साथ अपनी बात खुलकर कहने का साहस भी लक्ष्य किया जा सकता है। १९ अक्तूबर, १८९५ के अंक में स्वामीजी की सुप्रसिद्ध अँग्रेजी कविता, ''दि सांग ऑफ संन्यासिन'' पर मद्रास टाइम्स ने ''दि स्वामी ऐज ए पोस्ट' शीर्षक संपादकीय प्रकाशित किया जिसमें कविता की प्रशंसा इन शब्दों में की गई, 'सम्पूर्ण आत्मोत्सर्ग का आग्नेय आदर्श इस कविता में फूट रहा है। उसमें परम गरिमा, आत्मा की ऐकान्तिक उत्कण्ठा की शाब्दिक अभिव्यक्ति है।'' लेखक ने स्वामीजी की काव्य चेष्टा की तुलना गैरीबाल्डी की काव्य चेष्टा से की है।

मद्रास टाइम्स ने २३ फरवरी, १८९५ को एक सम्पादकीय छापा- 'एमांग दि प्रोफेट्स'। इसमें लेखक ने भगवान विष्णु के अवतारों की चर्चा की, फिर शंकराचार्य और चैतन्यदेव का नाम लिया और फिर विवेकानन्द को उन्हीं की श्रेणी में सादर स्थान दिया। विवेकानन्द में ऐसे अनेक गुण हैं कि भविष्य में लोग ईश्वर के अवतारों में उनकी गणना करेंगे। ''हमारे बीच यदि कोई देवता या देवता-सरीखा मनुष्य है तो वे निश्चय ही स्वामी विवेकानन्द हैं।'' १८ जुलाई, १८९५ को प्रकाशित खेतड़ी के राजा अजीत सिंह को लिखे स्वामीजी के पत्र की चर्चा करते हुए २७ अगस्त, १८९५ के सम्पादकीय में लिखा कि जिस साम्यवाद की बात यहाँ स्वामीजी ने कहा है और जो पश्चिम में निवास करने के फलस्वरूप उनमें पैदा हुई है, यदि भारत में लौटकर स्वामीजी ने उसका प्रचार किया तो वे एक नए बुद्ध की भूमिका में दिखाई देंगे।

विवेकानन्द के द्वारा भारत में एक तरह का जागरण आया। उसे हिन्दू पुनरुत्थान कहें या पुनर्जागरण या नवजागरण, इसकी चर्चा तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में देखी जा सकती है। यहाँ तक कि ईसाई मिशनरियों ने भी इसे रेखांकित किया। बैंगलोर में धर्मप्रचारक लन्दन मिशन के रेवरेन्ड आर.ई. स्टेलर ने अप्रैल, १८९५ में प्रकाशित मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज की मैगजीन में (१८९४ की रिपोर्ट का सार संक्षेप करते हुए) लिखा कि भारत में एक प्रकार के हिन्दू पुनरुत्थान के लक्षण दिखाई दे रहे हैं, किन्तु वह हिन्दू धर्म की शक्ति और दुर्बलता दोनों का सूचक है। हिन्दू सामाजिक क्षेत्र में पाश्चात्य जीवनादर्श की ओर उन्मुख हैं, किन्तु धर्म के क्षेत्र में अत्यन्त प्राचीन जातीय आदर्श का पुन: प्रवर्तन चाहते हैं। स्टेलर की दृष्टि में सामाजिक क्षेत्र में पाश्चात्य आदर्श का मुखापेक्षी होना हिन्दू धर्म की दुर्बलता का लक्षण था। बाद में १८९५ की रिपोर्ट में उन्होंने हिन्दू जागरण की तुलना यूरोपीय पुनर्जागरण से की। जिस प्रकार पुनर्जागरण के दौर में यूरोप के विद्वानों ने बहुत समय से विस्मृत विश्व के प्राचीन साहित्य और दर्शन को बहुमान दिया, कुछ इसी प्रकार अब हिन्दू विद्वान् भी कर रहे हैं। केरल में पुनर्जागरण के बाद आया था सुधार - यहाँ भी उसी प्रकार होगा, ईसाई धर्म की विजय होगी। इस अंतिम वाक्य में उनकी मिशनरी निष्ठा बोल रही है, लेकिन भारत में जागरण की स्वीकृति उनकी रिपोर्ट में सुस्पष्ट है। जिन मिशनरी पत्रिकाओं में इस जागरण का मजाक उड़ाया गया था, उनमें भी प्रकारान्तर से जागरण की स्वीकृति है।

'हार्वेस्ट फील्ड' नाम की मिशनरी पत्रिका के मई १८९७ के अंक में एक लम्बा लेख छपा – 'न्यू हिन्दूइज्म एंड क्रिश्चयानिटी।' इसमें हिन्दू नवोत्थान के दो मुख्य कारण बताए गए हैं – एक तो थियोसोफी और एनी बेसेन्ट तथा दूसरे, स्वामी विवेकानन्द। एनी बेसेन्ट ने तो हिन्दू धर्म को जस का तस रखकर प्रचारित किया। विवेकानन्द 'वीरत्व और आत्मत्याग में देवतातुल्य' और हिन्दू धर्म के उद्धारकर्ता तो थे, लेकिन उन्होंने हिन्दू धर्म में कुछ पाश्चात्य चेतना का भी अंश मिलाकर प्रचारित किया आदि-आदि।

नेटिव ओपिनियन (१५ जुलाई, १८९४) और टाइम्स ऑफ इंडिया (५ मई, १८९५) जैसे ऐंग्लो-इंडियन पत्रों ने सारे भारत में हिन्दू नवोत्थान को लक्ष्य किया और उस पर लिखा। लाहौर के 'सिविल एंड मिलिटरी गैजेट' ने इस नवोत्थान के राजनीतिक पक्ष की ओर ध्यान आकृष्ट किया। मद्रास मेल ने गैजेट के लेख को २४ फरवरी, १८९८ के अंक में उद्धृत किया। एक आलेख में पंजाब की दुर्गापूजा को एक भयानक घटना बताया और 'दुर्गा माई की जय' को एक भयंकर नारा। एक दुर्गाभक्त ब्राह्मण से पूछा – दुर्गा के आने से मानव समाज का क्या कल्याण होगा? ब्राह्मण ने कहा – माँ के आविर्भाव से हिन्दुओं के सर्द खून में हलचल पैदा होगी। इसके बाद भावविह्वल जनता की ओर दिखाकर कहा - ''क्या उनकी चीत्कार नहीं सुन रहे हैं – वंदे मातरम्। यही लाभ हुआ। बाईबल, कुरान से भी प्राचीन हमारा पवित्र धर्म अपनी प्राणशक्ति प्रदर्शित कर रहा है। ब्रिटिश राज जैसे आया है, वैसे ही विदा हो जाएगा और उनकी बात सभी भूल जाएँगे, तब दुर्गा माई अपनी पूर्ण प्रभा में फिर प्रकाशित होंगी, जैसे पहले हुआ करती थीं।'' ब्राह्मण की बात सुनकर दर्शक अभिभूत होकर बारम्बार जयघोष करने लगे – जय जय दुर्गा माई की जय। पत्र-लेखक ने यह भी लिखा कि 'हिन्दू रिवाइवल' जितना सुना जाता है, उससे भी अधिक व्यापक है।

टाइम्स ऑफ इंडिया ने भारत के धार्मिक आन्दोलन के बारे में अनेक सम्पादकीय लिखे। प्रो. टॉनी ने 'इंपीरियल ऍड ऐशियाटिक क्वार्टरली' में श्रीरामकृष्ण के बारे में एक निबन्ध लिखा था। टाइम्स ऑफ इण्डिया ने २२ फरवरी, १८९६ के सम्पादकीय में उसकी विस्तृत चर्चा की। बाद में जब मैक्समूलर की श्रीरामकृष्ण परमहंस विषयक पुस्तक छपी तो उसके बारे में भी एक लंबा सम्पादकीय लिखा। मद्रास मेल के सम्पादकीय कॉलम में चार्ल्स जान्स्टन नाम के एक लेखक ने शिकागो धर्ममहासभा के कुछ ही समय बाद २६ दिसम्बर, १८९३ के अंक में एक लेख लिखा – 'इंडिया दी मदर ऑफ नेशन्स'। इस रचना का प्रारम्भ इस प्रकार होता है - एक सौ वर्ष हुए, शोपेनहावर ने भविष्यवाणी की थी कि भारत पाश्चात्य जनगण के मनोलोक पर ऐसा प्रभाव डालेगा, जो रेमेसाँ के प्रभाव के बराबर या उससे भी अधिक होगा। धीरे-धीरे लोगों ने इस भविष्यवाणी को व्यर्थ मान लिया। विलियम जोन्स और कोलब्रुक ने जो प्रेरणा जगाई थी, वह भी मन्द पड़ गई। लेकिन अब पुन: परिवर्तन हुआ है, ''भारत की साँस फिर से पाश्चात्य आत्मा को कम्पित करने लगी है। शोपेन-हावर की भविष्यवाणी सत्य होने को है। शिकागो की धर्ममहासभा से एक आन्दोलन पैदा हुआ है, जो अमेरिका और जर्मनी में प्रबल है, इंग्लैण्ड में अपेक्षाकृत कम।''

इसी लेखक ने १ मार्च, १८९५ के मद्रास मेल में एक भारतीय कवि के काव्यग्रंथ की समीक्षा करते हुए भारतीय नवजागरण की विशेषता इन शब्दों में प्रकट की – भारतीय नवजागरण बहिर्गत सत्य का अन्वेषक नहीं है, वरन् आत्मा को प्रकाशित करने वाले सत्य का उन्मोचक है ... इस प्रसंग में जो 'पूर्व' शब्द का व्यवहार किया जाता है उसका अर्थ भौगोलिक नहीं है, वह मनुष्य मात्र के हृदय की पूर्व दिशा को सूचित करता है, जहाँ सूर्योदय होता है।''

१७ अगस्त, १८९४ को मद्रास टाइम्स ने 'दि वेदान्त' शीर्षक मुख्य सम्पादकीय में शोपेनहावर और डॉगसन के हवाले से वेदान्त की महिमा का गान करने के बाद सम्पादक ने प्रश्न किया – लेकिन वेदान्त अमेरिका में क्यों लोकप्रिय हो रहा है? उनकी दृष्टि में इसके पीछे बहुत कुछ विवेकानन्द की भूमिका है जिन्होंने पुरी के विकट देवता, काशी के बन्दर या नंगे-पुंगे योगियों के हिन्दू धर्म को परे हटाकर पाश्चात्य शिक्षित समुदाय के बीच ज्ञान के निर्मल प्रकाश में हिन्दू धर्म के सुसंस्कृत रूप को प्रस्तुत किया।

१४ नवम्बर, १८९४ के अंक में इसी पत्र ने वारट्रग कीटली का 'पाश्चात्य चिन्तन पर हिन्दू धर्म का प्रभाव' शीर्षक व्याख्यान प्रकाशित किया जिसमें वक्ता ने वेदान्त प्रभावित पाश्चात्य लेखकों और बुद्धिजीवियों में शोपेनहावर, शिवलिंग, फिक्टे, मैक्समूलर, ड्रुमंड, हक्सली, स्टपफोर्ड, ब्रुक्स आदि का नाम लिया।

इसी दौर में प्रमथनाथ बसु की एक पुस्तक आई थी- हिन्दू सिविलाइजेशन अंडर ब्रिटिश रुल। इसमें हिन्दू सभ्यता की शक्ति और दुर्बलता का बहुत अच्छा विश्लेषण किया गया था। ३१ अक्तूबर, १८९४ के मद्रास टाइम्स में इस बहुचर्चित पुस्तक पर एक सम्पादकीय प्रकाशित हुआ। श्री बसु ने लिखा था – अंग्रेजों ने अपने शिल्प-वाणिज्य के लिए भारत के कुटीर उद्योग को नष्ट कर दिया, फलत: हस्तशिल्पी मर गए। भारत की आर्थिक दुर्दशा के जिम्मेदार अँग्रेज हैं। आर्थिक दशा को सुधारने के लिए कारीगरी की शिक्षा पर जोर देना होगा। मद्रास टाइम्स के सम्पादक ने श्री बसु के इस विचार का खंडन नहीं किया। सम्पादक ने श्री बसु के इस विचार का भी समर्थन किया कि अँग्रेजी राज के आरम्भिक दौर में भारतीय, विशेषकर बंगाली युवक हिन्दू धर्म का सब कुछ नष्ट करने पर उतारू थे, लेकिन अब हिन्दू धर्म का समर्थन करने पर जोर है – लेकिन उसके स्थूल रक्षणशील रूप का नहीं, वरन् उच्च दार्शनिक रूप का। इस नए विशुद्ध हिन्दू धर्म में सभी धर्मों के सत्य को स्वीकार करने की उदारता दिखाई दे रही है, इसीलिए ईसाई धर्म के सत्य को आत्मसात् करने में कोई बाधा नहीं है, लेकिन भारत के क्रिस्तान होने की सम्भावना दूर-दूर तक नहीं है। यह सम्पादकीय मद्रास टाइम्स की सत्यनिष्ठा और साहस का प्रमाण है।

११ फरवरी, १८९५ के ''ऐन इंडियन रेनेसांस'' शीर्षक सम्पादकीय में मद्रास टाइम्स के सम्पादक ने हिन्दुओं में मौलिक चिन्तन के अभाव का प्रश्न उठाया। अँग्रेज अक्सर कहा करते थे – भारतीय छात्रों में मौलिकता नहीं दिखाई देती। सम्पादक ने इस पर प्रश्न किया – इसकी जिम्मेदारी किस पर है, भारतीयों पर या हमारे ऊपर। भारतीय तो मुस्लिम शासन काल में भी मौलिक वैज्ञानिक चिन्तन में सक्षम थे। विलियम हंटर ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि जयपुर के ज्योतिर्विज्ञानी राजा जयसिंह ने १७०२ ई. में एक विख्यात फ्रांसीसी ज्योतिर्विद का भ्रम दूर किया था। अँग्रेजों ने आकर एक तो अपनी भाषा और शिक्षा व्यवस्था के बोझ के नीचे दबाकर भारतीयों के मन को पंगु कर दिया; दूसरे उन पर मौलिकता के अभाव का आरोप लगाकर धिक्कारने भी लगे। अँग्रेजी राज के अधीन एक ऐंग्लों इंडियन पत्र के संपादक का यह साहस आश्चर्यजनक है। सम्पादक ने आगे लिखा - फिर भी भारत जाग रहा है। भारत में पुनर्जागरण के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। चाहे जिधर देखिए, भारत के लोगों ने अपने ढंग से सोचना और काम करना शुरू कर दिया है। शिल्प, वाणिज्य, राजनीति, पत्रकारिता और विज्ञान में भारत आगे बढ़ रहा है लेकिन अफसोस कि अँग्रेज शासक डॉ. जगदीश चन्द्र बसु के समान मौलिक प्रतिभ सम्पन्न वैज्ञानिक का समादर करना नहीं चाहते और साथ ही भारतीयों में मौलिकता के अभाव का शोर भी मचाते हैं। सम्पादकीय का अन्त इन वाक्यों से होता है – प्राचीन भारतीयों में जो अपूर्व मौलिक प्रतिभा अपनी पूर्णता के साथ वर्तमान थी, वह नि:संदेह अब भी विद्यमान है। भारत जब पराजित, नई व्यवस्था की नीरस शिक्षा के अधीन था, तब उसकी प्रतिभा बाधाग्रस्त और मूर्छित हो गई थी। फिर भी वह अन्तर्निहित तो थी ही। नवजागरण शुरू हो गया है। अब वह पुन: जागेगी और अधिक शक्ति लेकर जागेगी, क्योंकि उसे दीर्घ निद्रा का विश्राम प्राप्त हो गया है।''

२ मार्च, १८९५ के सम्पादकीय में इस नवजागरण के बारे में 'मद्रास टाइम्स' के सम्पादक ने लिखा, ''यह आंदोलन अपनी शक्ति से उठा है। हिन्दू धर्म जब बिल्कुल मृत प्रतीत हो रहा था तभी सहसा दिखाई दिया कि वह पुनर्जीवित हो उठा है। सभी ओर आन्दोलन हो रहा है – सर्वत्र विराट जनता किसी जातीय मिशनरी या किसी ऋषि (अर्थात् विवेकानन्द) के नाम पर बिजली की – सी उत्तेजना अनुभव कर रही है। संस्कृत विद्यालय, हिन्दू धर्मप्रचारक, धर्म शिक्षार्थी क्रमश: हर तरफ दिखाई दे रहे हैं, किसी आर्थिक लाभ की सम्भावना नहीं है - तब भी।... हिन्दू धर्म के उत्थान का महत्त्व असीम है। अच्छा हो, बुरा हो लेकिन भारत के इतिहास में भारी परिवर्तन होगा।'' (पृ० १७३) **(क्रमश:)**

पृष्ठ ५५७ का शेष भाग

दुर्गासप्तशती का क्या पाठ करोगे? क्या यही पढ़ोगे – रूपं देहि, भार्यां मनोरमां देहि? नवरात्र में तीन दिन बैठकर गीता पढ़ो। फिर दुर्गा का चार स्तोत्र पढ़ लेना ही पर्याप्त है, उसके भीतर ही वेदान्त का सार है। दुर्गा के चार स्तोत्रों में जो कहा गया है, गीता के हर पन्ने पर वही लिखा है। किन्तु महाराज लोगों ने चंडी की जो इतनी प्रशंसा की है, वह केवल हमारी संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिये। इसके अतिरिक्त, वे लोग किसी चीज का खण्डन करने नहीं आए थे, बल्कि गठन करने आए थे। ***(क्रमश:)***

बालक भक्त सुव्रत

स्वामी पद्माक्षानन्द

बात इस कल्प की नहीं है, बल्कि दूसरे कल्प की है। उस समय नर्मदा के पवित्र तट पर अमरकण्टक क्षेत्र में सोमशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नी का नाम सुमना था। ये धार्मिक दम्पती ईश्वर की आराधना में लीन रहते थे। भगवान विष्णु की कृपा से उनके घर एक पुत्र का जन्म हुआ। उन्होंने विष्णु भगवान के व्रत-अनुष्ठान से प्राप्त पुत्र का नाम सुव्रत रखा। बालक सुव्रत जन्म से ही भगवान का भक्त था। वह सदा भगवान का ध्यान किया करता था। सुव्रत खेलने, पढ़ने, गाने, हँसने, देखने, चलने, खाना खाने तथा सोने में सदा ईश्वर का ही ध्यान करता रहता था। उसकी भगवान की आराधना में ऐसी निष्ठा थी कि उसने अपने मित्रों को भी ईश्वर के नाम दे दिये थे और उनको केशव, गोविन्द, नारायण, दामोदर, हरि, श्याम आदि नामों से पुकारता था। सभी जगह, सभी वस्तुओं, सभी प्राणियों में वह ईश्वर को ही देखता था। पूर्वजन्म और इस जन्म की भक्ति से उसे सदैव श्रीहरि के दर्शन होते रहते थे।

सुव्रत की माँ जब उससे कहती – 'बेटा, तुझे भूख लगी होगी; आ, खाना खा ले।' तब वह अपनी माँ से कहता – ''माँ! भगवान का नाम अमृत के समान है, मैं उसी से तृप्त रहता हूँ। मुझे भूख नहीं लगती।''

भोजन के समय वह भोजन करने से पहले संकल्प करता – 'इस अन्न से भगवान विष्णु तृप्त हों।' जब वह सोने के लिए जाता, तब वह कहता – 'मैं योगनिद्रापरायण श्रीहरि की शरण में आया हूँ।' इस प्रकार वह उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते सदा श्रीहरि का ही ध्यान किया करता था तथा सभी वस्तुओं को भगवान को अर्पण करके प्रसादस्वरूप ग्रहण करता था। इस प्रकार उसका सारा शरीर-मन-प्राण ईश्वर की आराधना में लगा रहता था।

युवा होने पर सुव्रत ने वैडूर्य पर्वत पर सिद्धेश्वर तीर्थ के निर्जन वन में भगवत्-प्राप्ति के लिए तपस्या आरम्भ किया। बचपन से ही ईश्वर की आराधना में तल्लीन सुव्रत ने अपने मन को एकमात्र श्रीहरि के चरणों के ध्यान में लगा दिया। वह कठोर तपस्या करने लगा। उसकी तपस्या और भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु ने उसको दर्शन दिये। भगवान

विष्णु ने सुव्रत से वर माँगने के लिए कहा। सुव्रत भगवान की स्तुति करने लगा। उसने भगवान से कहा –'भगवन्! आपने दर्शन देकर मुझे कृतार्थ कर दिया। आपके दर्शन से मेरा मानव-जीवन सफल हो गया।'' फिर उसने कहा, ''प्रभु! यदि आप वर देना चाहते हैं तो यह वर दीजिए कि मेरे माता-पिता आपके धाम में सशरीर प्रवेश करें।'' भगवान विष्णु ने तथास्तु कहा और अन्तर्धान हो गये।

भक्त सुव्रत अपनी भक्ति के प्रभाव से अपने माता-पिता के साथ श्रीहरि के नित्य धाम 'वैकुण्ठ-लोक' में सशरीर चला गया। इस बालक की भक्ति से प्रेरित होकर हम सदैव सभी प्राणियों, सभी वस्तुओं तथा सभी जगहों में ईश्वर का दर्शन करने का प्रयास आरम्भ करें। तथा अपने मानव-जीवन को सफल करते हुए अपने माता-पिता तथा बन्धु-बान्धव सभी का कल्याण करें। OOO

सत्कर्म में कभी पीछे न हटना। अच्छे कार्य में अनेक बाधा-विघ्न आते हैं। अपने ही पैरों पर खड़े होकर कार्य करना उत्तम है। मनोनुकूल संगी मिल जाए तो ठीक है, नहीं तो अकेले ही करना अच्छा है। जिसका मन संशययुक्त है, उसके द्वारा अच्छा कार्य होने की सम्भावना नहीं।

– स्वामी सुबोधानन्द

साधुओं के पावन प्रसंग (११)

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

मेरा स्वभाव था कि किसी कार्य की जिम्मेदारी लेने पर जब तक वह अच्छी तरह पूरा न हो जाए, तब तक चैन से नहीं बैठता था। इसके लिए कई बार मुझे अधिक परिश्रम करना पड़ता था। गम्भीर महाराज ने यह देखकर एक दिन शाम को चाय पीते-पीते कहा, 'Do you know the last message of Sri Krishna?' – क्या तुम भगवान श्रीकृष्ण का अन्तिम सन्देश जानते हो? मैंने कहा, नहीं।' तब उन्होंने कहा, 'एक कहानी सुनो। श्रीकृष्ण अपनी वृन्दावन लीला कर कंस-वध, शिशुपाल-वध, कुरुक्षेत्र के युद्ध में सारथि की भूमिका इत्यादि कार्य कर द्वारका में शेष जीवन-यापन कर रहे थे। एक दिन प्रसंगवश उन्होंने उद्धव से कहा, 'उद्धव, मेरे उपदेश भागवत और गीता में तो हैं। इसके अलावा मेरा एक अन्तिम उपदेश है, उसके बाद इस पृथ्वी से मैं शीघ्र ही विदा लूँगा।' उद्धव तो विलाप कर रोते हुए कृष्ण से बोले, 'प्रभु कृपा कर आप हमें छोड़कर मत जाइए। आपके अलावा इस यदुवंश की कौन रक्षा करेगा। आप धर्म के रक्षक, वाहक और व्याख्याता हैं। आपके नहीं रहने से जगत में धर्म की क्षति होगी।' तब श्रीकृष्ण ने कहा, 'नहीं, मेरा कार्य पूरा हो गया है। मुझे शीघ्र ही इहलोक से जाना होगा।' उद्धव ने कहा, 'प्रभु, तब आपका अन्तिम उपदेश प्रदान कीजिए।' श्रीकृष्ण बोले, 'देखो उद्धव, मैं स्वयं भगवान, नरदेह धारण कर जीवों के दुख-शमन हेतु जन्म ग्रहण किया। किन्तु लोग मुझे देखकर डर जाते हैं। उन्हें लगता है कि मैं विनाशकारी हूँ। कुलवधुएँ भी मुझे रास्ते में आता देखकर दरवाजे-खिड़कियाँ बन्द कर देती हैं। उस दिन मुझे बड़ी भूख लगी थी। एक बुढ़िया गाय दुह रही थी। मैंने उससे कहा – मुझे भूख लगी है, कुछ खाने को दोगी? उस बुढ़िया का दूध का बर्तन उसी समय हाथ से छूटा और गिरकर टूट गया। वह दौड़कर घर में घुसी और दरवाजा बन्द कर दिया। मन में बहुत दुख हुआ कि मैं स्वयं भगवान होकर इस जगत के दुख-कष्ट निवारण हेतु दिन-रात परिश्रम करता हूँ और ये सब लोग मुझे एक अनिष्टकारी के रूप में देखते हैं। जीवन के अन्तिम समय में मैं तुम्हें यह अन्तिम बात कहता हूँ कि स्वयं भगवान होकर भी मैं इस जगत के दुख-कष्ट को कम करने मे सक्षम नहीं हूँ। इसलिए इस जगत में किसी के लिए कुछ करने का नहीं है।'

कथा सुनाने के बाद गम्भीर महाराज बोले, 'स्वामीजी ने कहा है, यह जगत कुत्ते की टेंढ़ी पूँछ जैसा है। इसे सीधा करने का प्रयत्न करना होगा और इस प्रयत्न के द्वारा हम स्वयं ही सीधे हो जाएँगे। जगत जैसा है, वैसा ही रहेगा।'

रूस की प्रथम अन्तरिक्ष महिला-यात्री वेलिन्टिना का कोलकाता की महिला मंच द्वारा अभिनन्दन किया गया। इस सभा में स्वामी दयानन्द जी और भरत महाराज के साथ गम्भीर महाराज भी गए थे। लौटने के बाद वे मुझसे बोले, "अरे, आज एक नए प्रकार की बंगला सुनने को मिली। वेलेन्टिना ने बंगला बात को रूसी भाषा में लिखकर बोला, 'आपके देश में आकर हमें भयंकर गरमी लगी है। यह गरमी जलवायु की गरमी नहीं, अपितु आपके हृदय की गरमी है।'"

सुरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती श्रीमाँ के शिष्य थे। पत्नी-वियोग के बाद वे प्राय: गम्भीर महाराज के पास आकर रोते थे। महाराज अत्यन्त सहानुभूति के साथ उन वृद्ध भक्त को सान्त्वना प्रदान करते। एक दिन उन्होंने सुरेनबाबू के साथ मेरा परिचय कराकर उनसे कहा, "तुम इनके साथ कुछ बात करना। मुझे समय कम है।" इसके बाद सुरेनबाबू मुझसे सुख-दुख की बातें करते और माँ की कृपा अथवा ठाकुर के शिष्यों की बातें बोलते। भवभूति ने उत्तर रामचरितमानस में आदर्श चरित्र का वर्णन करते हुए कहा है, 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।' इस प्रकार के युगपत् विरोधी भाव गम्भीर महाराज के जीवन में देखने को मिले थे।

स्वामी शिवस्वरूपानन्द जी (मति महाराज) श्यामलाताल आश्रम के अध्यक्ष थे। वे कुछ दिन अद्वैत आश्रम में थे। एक दिन बातों-बातों में उन्होंने गम्भीर महाराज से कहा, "आप चुपचाप कमरे में बैठकर काम करते हैं। साधु-ब्रह्मचारियों को कुछ भी उपदेश नहीं देते। वे लोग सीखेंगे कैसे?"

महाराज ने तुरन्त उत्तर दिया, "क्या वे मेरा जीवन नहीं देखते?" उन्होंने और कुछ भी नहीं कहा। सचमुच उन्होंने अपने जीवन में ठाकुर-माँ-स्वामीजी का आदर्श भलीभाँति प्रकट किया था।

स्वामी शाश्वतानन्द जी की मृत्यु के बाद स्वामी वीरेश्वरानन्द जी अकेले ही मठ-मिशन का कार्यभार संभाल रहे थे। उन्होंने गम्भीर महाराज से सह-महासचिव का पदभार ग्रहण करने का अनुरोध किया, किन्तु उन्होंने पहले स्वीकार नहीं किया। उस समय स्वामीजी की जन्मशती का कार्य पुरजोर चल रहा था। इसके बाद स्वामी माधवानन्द जी के आदेश से वे बेलूड़ मठ गए और सह-महासचिव बनने को राजी हुए। गम्भीर महाराज को विदाई देने के लिए अद्वैत आश्रम में विराट भण्डारा का आयोजन हुआ। लगभग 250 साधुओं की व्यवस्था करने के लिए मुझे बहुत दौड़-धूप करनी पड़ी। गम्भीर महाराज मेरी अवस्था देखकर बोले, "Why you are working so hard to throw me out from the Ashrama? – मुझे आश्रम से निकालने के लिए तुम इतना परिश्रम क्यों कर रहे हो?" इस विनोद के द्वारा भी उनकी निर्लिप्तता और अनासक्ति परिलक्षित होती है।

१९६४ में मैं बेलूड़ मठ स्थित प्रशिक्षण केन्द्र में सम्मिलित हुआ। गम्भीरानन्द जी महाराज तब सह-महासचिव थे और लेगेट हाउस के बीच वाले कमरे में रहते थे। प्रत्येक रविवार को मैं उनके कमरे में जाकर पुस्तकों की धूल साफ करता और उनके जूते पॉलिश करता। एक बार अक्षय तृतीया के दिन उन्होंने मुझसे कहा, "अस्पताल में मृत्युंजयानन्द (आसनसोल आश्रम के अध्यक्ष एवं महापुरुष महाराज के शिष्य) को देखने गया। वह विमल मित्र की 'कोड़ि दिये किनलाम' एक (बंगला पुस्तक) पुस्तक पढ़ रहा था। तीस रुपए कीमत थी। यदि मैं स्वामीजी का जीवन चरित्र लिखूँ, तो क्या लोग उसे पढ़ेंगे?" मैंने कहा, "हाँ, क्यों नहीं पढ़ेंगे। अवश्य पढ़ेंगे। आप लिखना शुरू कीजिए। मैंने पहले भी आपसे कहा था कि सिस्टर गार्गी की पुस्तकों में अनेक तथ्य हैं और प्रमथनाथ बसु लिखित स्वामीजी की पुस्तक बहुत पुरानी हो गई है। आधुनिक और समयोपयोगी (updated) चरित्र लिखना ठीक होगा।' ***(क्रमशः)***

पृष्ठ ५५३ का शेष भाग

कारणरूप जगदीश्वर भगवान श्रीराम को नमस्कार है। ब्रह्म की सत्ता का आश्रय लेकर चराचर जगत की प्रतीति कराने वाली शक्ति ही उनकी माया कहलाती है। 'मानस' में अन्यत्र भी भगवान की इस मोहरूपिणी मायाशक्ति का उल्लेख है जैसे 'नारद-मोह' के प्रसंग में...

निज माया बल देखि बिसाला।
हियँ हँसि बोले दीनदयाला।। १/१३१/८

या फिर काकभुशुण्डि और गरुड़ संवाद में –

तब ते मोहि न ब्यापी माया।
जब ते रघुनायक अपनाया।।
यह सब गुप्त चरित मैं गावा।
हरि मायाँ जिमि मोहि नचावा।। ७/८८/३-४

किन्तु यही मायाशक्ति, जो अज्ञान की सृष्टि करती है, वही ज्ञान की भी सृष्टि करती है। यही मायाशक्ति जीव का ब्रह्म से परिचय भी कराती है। यद्यपि जीव ईश्वर का ही अंश है, उससे अभिन्न है, तो भी अज्ञान के कारण स्वयं को उससे अलग और दूर समझता है। अज्ञान नष्ट होने पर वह पुन: ईश्वर के साथ अपनी एकता का अनुभव कर पाता है। गोस्वामीजी सीताजी को 'माया' कहकर भी सम्बोधित करते हैं—

आगें रामु लखनु बने पाछें।
तापस बेष बिराजत काछें।।
उभय बीच सिय सोहति कैसें।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसें।। २/१२२/१-२

वास्तव में भगवान की शक्ति तो एक ही है, उसके ही नाना रूप और नाना कार्य हैं, वह जीव और परमात्मा के बीच व्यवधान भी बनती है और सोपान भी बनती है। इसका बड़ा सुन्दर निदर्शन 'मानस' के वनवास-प्रसंग में मिलता है, जब मार्ग में पड़ने वाले गाँवों की स्त्रियाँ सीताजी से उनका और श्रीराम का सम्बन्ध जानना चाहती हैं। 'मानस' का यह अंश साहित्यिक दृष्टि से बड़ा सुन्दर और सरस तो है ही साथ ही बड़े गहरे संकेत भी देता है। 'मानस' का यह अंश 'कवितावली' के इस छंद के साथ मिलाकर यदि पढ़ें, तो और भी सौन्दर्य की सृष्टि होती है – ***(क्रमशः)***

समाचार और सूचनाएँ

स्वामी विवेकानन्द के शिकागो के विश्वधर्म- सम्मेलन में प्रदत्त व्याख्यान के १२५वें स्मरणोत्सव के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के केन्द्रों द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम आयोजित किए गए, जिसका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है –

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में ३ सितम्बर, २०१९ को सन्ध्या ७ बजे आश्रम के सत्संग भवन में सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें रामकृष्ण मठ

रायपुर आश्रम के कार्यक्रम में स्वामी गौतमानन्द जी महाराज, संन्यासीगण तथा भक्तगण

और रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ उपाध्यक्ष तथा रामकृष्ण मठ चेन्नई के अध्यक्ष संघगुरु पूज्यपाद स्वामी गौतमानन्द जी महाराज मुख्य अतिथि थे। रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के सचिव स्वामी व्याप्तानन्द जी महाराज वक्ता थे और आश्रम के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने अध्यक्षता की। सभा में लगभग ३०० लोगों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर में ६ सितम्बर, २०१९ को सायं ५.३० बजे सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। इसमें सह-संघाध्यक्ष स्वामी गौतमानन्द जी महाराज मुख्य अतिथि थे। आश्रम के सचिव व्याप्तानन्द जी, रामकृष्ण मिशन आश्रम, विशाखापट्टनम् के सचिव स्वामी आत्मविदानन्द जी वक्ता थे और स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने अध्यक्षता की थी। इसमें लगभग २००० लोगों ने भाग लिया।

विवेक ज्योति पत्रिका पढ़ते हुए स्वामी गौतमानन्द जी महाराज

रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा में १५ जुलाई, २०१९ को काकड़ीघाट में स्वामी विवेकानन्दजी की मूर्ति का अनावरण किया गया। उसके बाद सार्वजनिक सभा आयोजित की गई। १६ जुलाई, २०१९ को अलमोड़ा आश्रम के निकट विवेकानन्द कार्नर में स्वामी विवेकानन्द की प्रतिमा का अनावरण किया गया। कार्यक्रम का आयोजन रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा और नगरपालिका परिषद के संयुक्त तत्त्वावधान में किया गया था। १६ जुलाई को ही अलमोड़ा आश्रम द्वारा पूर्व में आयोजित सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कृत किया गया। इस कार्यक्रम में लगभग ४०० लोग उपस्थित थे।

विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में ११ और १२ सितम्बर, २०१९ को दो दिवसीय कार्यक्रम आयोजित किया गया। ११ सितम्बर को ३ बजे की सभा में छत्तीसगढ़ के मुख्यमन्त्री श्री भूपेश बघेल जी मुख्य अतिथि थे और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी अव्ययात्मानन्द जी महाराज विशिष्ट अतिथि थे। रामकृष्ण आश्रम, नारायणपुर के सचिव स्वामी व्याप्तानन्द जी महाराज ने अध्यक्षता की। विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा ने आगत अतिथियों का स्वागत और प्रारम्भिक उद्बोधन दिया।

१२ सितम्बर को सन्ध्या ६ बजे की आयोजित सभा में रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ उपाध्यक्ष तथा रामकृष्ण मठ चेन्नई के अध्यक्ष संघगुरु पूज्यपाद स्वामी गौतमानन्द जी महाराज मुख्य अतिथि थे। विवेक ज्योति के सम्पादक स्वामी प्रपत्त्यानन्द विशिष्ट अतिथि थे और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने अध्यक्षता की थी।